पशुधन ज्ञान

वर्ष : 3 अंक : 01 जनवरी, 2017 अर्धवार्षिक, हिसार मूल्य : ₹30/-

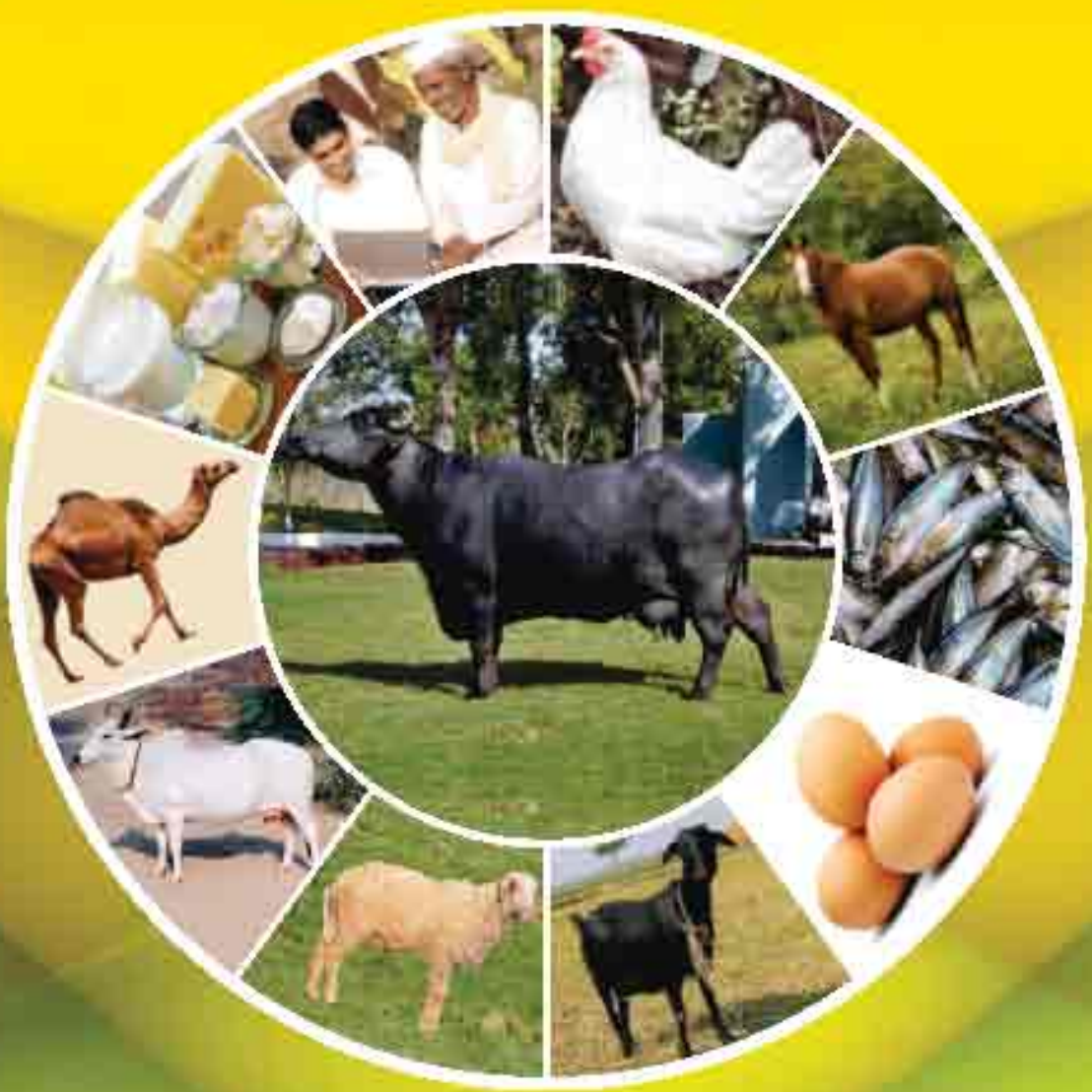

प्रकाशक
विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
हिसार - 125004 (हरियाणा)

प्रकाशकः

डॉ. आर.एस.श्योकन्द

निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय

हिसार–125004 (हरियाणा)

सम्पादकः

डॉ. देवेन्द्र सिंह

सम्पादकीय मण्डलः

डॉ. वन्दना भनोट

डॉ. विशाल शर्मा

डॉ. स्नेहिल गुप्ता

टंकन सहायकः

सूरज

प्रकाशकः डॉ. आर.एस. श्योकन्द, निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय, लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार ने डॉ. देवेन्द्र सिंह के सम्पादन में **डोरेक्स ऑफसैट प्रिन्टर्स, हिसार** से लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के लिए मुद्रित करवा कर जनवरी, 2017 को प्रकाशित किया।

निर्देशः इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है तथा लेखकों द्वारा पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत की गई हैं। सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक तथा लेखकों के द्वारा दी गई जानकारी के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। ब्रॉंडेड दवाइयों व उत्पादों के नाम केवल उदाहरण के रूप में दिए हैं तथा इन्हें विश्वविद्यालय की ओर से सिफारिश न माना जाए। पाठकों को यह सलाह दी जाती है कि किसी भी जानकारी को प्रयोग में लाते समय विशेषज्ञों की सलाह लें। किसी भी त्रुटि के लिए सम्पादक से सम्पर्क किया जा सकता है। सभी विवादों का न्यायक्षेत्र हिसार न्यायालय होगा।

डॉ. गुरदयाल सिंह
कुलपति
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

संदेश

आज के युग में पशुपालन एक ऐसे व्यवसाय के रूप में उभर कर सामने आया है जिससे लघु किसान भी पर्याप्त आय कमाकर सुनहरे भविष्य की कल्पना कर सकते हैं। वर्तमान समय में पशुओं की कीमत दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है इसलिए उनकी उचित देख–रेख जरूरी है।

पशुपालकों तथा वैज्ञानिकों के अथक प्रयासों के स्वरूप पशुपालन व्यवसाय अपनी पृथक पहचान के साथ विश्व स्तर पर एक मुख्य आय स्त्रोत के रूप में आज चिन्हित हो रहा है। मौसम के उतार–चढ़ाव के चलते आज किसान भाइयों ने पशुपालन तथा इससे जुड़े व्यवसाय जैसे डेयरी प्रबंधन, मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन को मुख्य व्यवसाय के रूप में चुनना शुरू कर दिया है। कृषि पर अत्याधिक मौसम, मिट्टी तथा खनिज–लवणों के प्रभाव से अस्थिरता उत्पन्न होती है, उसके परिणामस्वरूप आज का युवा अपना भविष्य पशुपालन या उससे जुड़े व्यवसाय में तलाशने लगे है। जहाँ युवा पहले डॉक्टर, इंजीनियर बनने पर ही जोर देते थे, वहाँ आज का युवा अपना डेयरी व्यवसाय तथा पोषण जड़ित तथा अधिक गुणवत्ता वाला माँस उत्पादन का व्यवसाय करने की बात करने लगा है। संकल्प से ही कार्य सिद्धि की राह प्रशस्त होती है।

भारत युवाओं का देश है, इस राह पर लुवास संस्थान भी अग्रसर है। संस्थान अपने युवा वैज्ञानिकों के जोश तथा वरिष्ठ वैज्ञानिकों के अनुभव के मेल से पशुपालन व्यवसाय को सुदृढ़ बनाने के लिए निरंतर कार्यरत है।

लुवास एवं देश के अन्य पशुपालन एवं पशु चिकित्सा सम्बंधी अनुसंधान संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में उच्च कोटि के उपयोगी अनुसंधान हो रहे हैं, लेकिन इनका अधिकतम एवं सम्पूर्ण लाभ हमारे पशुपालक भाई–बहन तभी उठा सकते हैं जब इसे उनकी ही भाषा में सरल एवं सुगम्य तरीके से प्रस्तुत किया गया हो। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए लुवास संस्थान द्वारा पशुधन ज्ञान का प्रकाशन पिछले कई वर्षों से लगातार किया जा रहा है।

मैं विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों, सम्पादक मंडल के सदस्यों तथा सहयोगी वैज्ञानिकों को पशुधन ज्ञान के नवीन संस्करण को प्रकाशित करने व उनके योगदान के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि यह नवीन संस्करण गाँवों में कार्य कर रहे हमारे पशु चिकित्सकों तथा पशुपालकों के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगा।

(गुरदयाल सिंह)

डॉ. आर.एस. श्योकन्द
निदेशक, विस्तार शिक्षा
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

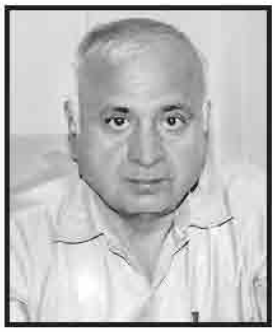

संदेश

पशुधन ज्ञान पत्रिका के प्रस्तुत वर्तमान अंक में पशुपालकों के मार्गदर्शन हेतु पशुधन प्रबंधन, पशुओं की रोगों व परजीवीयों का नियन्त्रण, पशुपालन कार्यों में श्रय जागरूकता, नारी सशक्तिकरण तथा पशु–स्वास्थ्य पर कुछ जानकारियाँ संकलित की गई है। पत्रिका में छपे लेखों से सम्बंधित विस्तृत जानकारी हेतु पशुपालक भाई–बहनों से अनुरोध है कि वे या तो सीधे प्रसार शिक्षा निदेशालय के वैज्ञानिकों से या किसी भी नजदीकी पशु विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिकों से सम्पर्क बनाएँ। पशु पालकों को चाहिए कि वह पशुजनित उत्पादों के सही रख–रखाव, भंडारण तथा उचित समय पर आवश्यकता से अधिक उत्पादों को मूल्य वर्धित अधिक गुणवत्ता वाले उत्पादों में परिवर्तन करके तथा निर्यात पर विशेष ध्यान केन्द्रित करें। एक आर्थिक विश्लेषण के अनुसार, आवश्यकता से अधिक दूध के हम उत्पाद बनाकर बेचते हैं तो पनीर में 28%, दही में 74.38%, खोआ में 110%, क्रीम में 95%, आईसक्रीम में 168%, छैना में 45.7%, मक्खन में 125.70% तथा घी में 95% तक अधिक लाभ होता है। मेरा पशुपालन व्यवसाय से जुड़े भाई–बहनों से अनुरोध है कि वह इस विश्वविद्यालय के कर्मठ व सुयोग्य वैज्ञानिकों के ज्ञान एवं सूचना तंत्र का भरपूर लाभ उठायें तथा पशु चिकित्सा व पशुपालन सम्बंधी समस्याओं के समाधान व अन्य जानकारी के लिए प्रसार शिक्षा निदेशालय, पशुविज्ञान केन्द्रों व अनुसंधान केन्द्रों से सम्पर्क बनाएँ रखें व अपने सुझावों से समय–समय पर अवगत करवाते रहें।

पशुधन ज्ञान के इस अंक में भी पशुपालकों के लिए काफी जानकारियाँ समाहित की गई हैं। आशा है पशुधन ज्ञान का यह संकलन पशुपालन से जुड़े भाई–बहनों के लिए उपयोगी साबित होगी। पशु चिकित्सा तथा पशुविज्ञान क्षेत्र में अगर कोई पशु पालक किसी समस्या का सामना कर रहे हों तो उनसे हमारे वैज्ञानिकों को अवगत कराएँ ताकि विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक उस समस्या का समाधान ढूंढकर दूर कर सकें तथा सम्बंधित जानकारी अगले अंक में प्रकाशित कर सकें। पशुधन ज्ञान पत्रिका में प्रकाशित लेख संस्थान के वैज्ञानिकों, शिक्षकों व छात्रों के मौलिक विचारों तथा चिंतन के प्रतिक हैं। उनके सार्थक योगदान हेतु मैं ह्रदय से उनका आभार प्रकट करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि भविष्य में भी आपस भी अपने विचारों को पशुपालकोपयोगी लेख के माध्यम से हम तक पहुँचाने का कार्य करते रहेंगे ताकि पत्रिका का प्रकाशन निरन्तर रूप से जारी रहे।

(आर.एस. श्योकन्द)

सम्पादक की कलम से...

भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुपालन का विशेष महत्व है। पशुपालन कृषि का एक अभिन्न अंग बन गया है। किसान की आय को दोगुना करने के प्रयास में पशुपालन का विशेष योगदान सिद्ध होगा। पारम्परिक तरीके से पशुपालन में वैज्ञानिक पद्धति का समन्वय बनाकर पशुपालक अधिक लाभ कमा सकते है। वर्तमान युग में प्रचलित पशुधन सम्बन्धित आधुनिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान द्वारा उच्च कोटि के तथा उच्च गुणवता युक्त पशुधन प्राप्त किया जा सकता है। इस दिशा में पशुओं की नस्ल सुधार, उचित रख–रखाव, प्रबंधन तथा संतुलित आहार की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

भारतीय पशुपालन की शैली में परम्परागत ज्ञान का सदा ही एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यह वह ज्ञान का भंडार है जो अनुभव, अभ्यास एवं सांस्कृतिक आधार पर पशुपालक अपनी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अन्तरित करते रहे हैं।

एक प्रचलित कहावत है कि एक ज्ञानी वृद्ध पुरुष की मृत्यु, समस्त पुस्कालय का अदृश्य होना है। इसके विपरित पशुपालन व कृषि से जुड़े विश्वविद्यालय पशुपालन के आधुनिक तरीकों पर निरन्तर शोध करते है। इनके मध्यास्त विस्तार शिक्षा निदेशालय की यह पत्रिका एक सेतू का कार्य करती है जिसमें ग्रामीण परिवेश में कार्यनिर्वित हमारे पशु चिकित्सक एवं विश्वविद्यालय के शोधकर्ता अपनी जानकारी तथा अनुभवों को जन समुदायों के साथ साँझा करते हैं।

इस पत्रिका के माध्यम से मैं पशुपालन व इससे जुड़े व्यवसायों में सम्मिलित किसान भाई–बहनों से निवेदन करता हूँ कि वे पत्राचार के माध्यम से अपने विचार अनुभव व कठिनाइयों को साँझा करें तथा जिससे इसकी चर्चा विस्तारपूर्वक हो सके तथा वैज्ञानिकों व पशु चिकित्सा अधिकारियों को इसके प्रति सचेत किया जा सके। भारत देश में परम्परागत ज्ञान का ऐसा भंडार है जिसका अगर समय पर वैज्ञानिक शैली के साथ समन्वय स्थापित हो सके तो पशुपालन युवाओं के लिए रोजगार के नए अवसर के साथ–साथ प्रदेश के मौजूदा उत्पादन को कई गुणा बढ़ाया जा सकता है। वर्तमान युग में बढ़ती महँगाई और घटती आय के समय में पशुपालन के आधुनिकरण द्वारा उच्च गुणवत्ता का उत्पाद भारतीय किसानों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नई पहचान दिलाएगा।

(देवेन्द्र सिंह)

विषय सूची

क्र.सं.	विषय		पृष्ठांक
1.	खरगोश पालन कैसे करे?	नीलम रानी, पी.के. कपूर एवं पीयूश तोमर	1
2.	भेड़–बकरियों में (कन्टेजियस ऐक्थाइमा) मुँहा रोग	राजेश सिंगाठिया एवं सुभाष खरब	3
3.	भेड़–बकरियों में फिड़किया रोग एवं रोकथाम	राजेश सिंगाठिया एवं सुभाष खरब	4
4.	मनुष्य आहार में दूध की उपयोगिता	सज्जन सिंह एवं दलजीत सिंह	6
5.	गौवंशियों में चींचड़ी रोग (थीलेरियोसिस)	नीलम, रिक्की झांभ, राजेन्द्र यादव एवं नरेश कुमार राखा	8
6.	पशुपालन में परंपरागत ज्ञान का महत्व एवं उपयोगिता	दिपिन चन्द्र यादव, दिनेश गुलिया एवं देवेन्द्र सिंह	10
7.	ऑर्गेनिक ब्रॉयलर मीट उत्पादन	देवेन्द्र बिढ़ाण, दिपिन चन्द्र यादव एवं दिनेष गुलिया	11
8.	घोड़ों में ग्लैंडर्स / फारसीः लक्षण, चिकित्सा एवं रोकथाम	अनीता दलाल, कमलदीप, अनिका मलिक एवं सरिता	13
9.	पशुओं में जूएँ एवं किलनियों का संक्रमणः लक्षण, चिकित्सा एवं रोकथाम	कमलदीप, अनीता दलाल, अनिका मलिक, एवं रचना	14
10.	पशुओं में मुख्य परजीवी रोग, लक्षण एवं निदान के उपाय	स्नेहिल गुप्ता, सत्यवीर सिंह एवं एस.के. गुप्ता	15
11.	पशुओं में तपेदिक रोग (टी.बी.) लक्षण एवं रोकथाम	कमलदीप, रचना, ऋचा खीरबाट एवं अनिका मलिक	19
12.	नवजात कटड़े–कटड़ियों को खीस पिलाने का महत्व	रचना, ऋचा खीरबाट, अनिका मलिक एवं सौरभ छाबड़ा	20
13.	ए1 और ए2 दूध की एक दुधिया कथा	रूबी सिवाच, अनिका मलिक एवं सोनम नागर	22
14.	गौ मूत्र–पौराणिक व आधुनिक उपयोग	करण सिंह, अमित सांगवान, संदीप कुमार एवं नीरज अरोड़ा	23
15.	मूत्र की जैव रासायनिक जाँच	शालिनी शर्मा एवं निर्मल सांगवान	25
16.	दूध की प्रोसैसिंग कर अधिक आय कमाएँ	धर्मबीर सिंह दहिया, रमेश कुमार एवं देवेन्द्र सिंह	27
17.	कुत्तों से मनुष्यों में संचारित होने वाले रोग	अनीता दलाल, कमलदीप, अनिका मलिक एवं गौरव चराया	31
18.	घोड़ों में पेट दर्द के कारण व बचाव के उपाय	जय भगवान एवं विनोद कुमार जैन	32
19.	भेड़–बकरियों में पी.पी.आर. (लघुरोमंथी) महामारी	स्नेह लता चौहान, सोनू एवं स्नेहिल गुप्ता	34
20.	कुक्कुट पालन व्यवसाय की असफलता के कारण व उन्हें दूर करने के उपाय	धर्मवीर सिंह दहिया, विपुल ठाकुर एवं रमेश कुमार	35
21.	स्वच्छ दुग्ध उत्पादन	शालिनी अरोड़ा, इंदू पांचाल एवं रूबी सिवाच	39
22.	पशुओं में सर्रा रोग के प्रभाव तथा प्रबंधन के उपाय	एस.के. गुप्ता, स्नेहिल गुप्ता एवं सत्यवीर सिंह	41
23.	पशुओं में अफरा रोग	सुरभि, अंकित कुमार, ज्योति शूंठवाल एवं वीनस	43
24.	पशु आवास प्रबंधन के महत्वपूर्ण बिन्दू	नरेन्द्र सिंह, संदीप एवं सुभाशिष साहू	45
25.	मुर्गियों में हैजा रोग : कारण, लक्षण व बचाव	सुभाष खर्ब, आशीष हुड्डा एवं राजेश सिंगाठिया	48

खरगोश पालन कैसे करें?

नीलम रानी, पी.के. कपूर एवं पीयूष तोमर
पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

व्यवसायिक दृष्टि से खरगोश पालन समाज के कम पढ़े लिखे, बेरोजगार नवयुवकों और भूमिहीन किसानों के लिए आमदनी का अच्छा स्त्रोत हैं। खरगोश पालन माँस उत्पादन, फर एवं खाल के लिए किया जाता है।

खरगोश के माँस के फायदे

- बाजार में उपलब्ध सफेद मीट में से खरगोश का मीट (माँस) सबसे बढ़िया क्वालिटी का है।
- खरगोश के मीट में आसानी से पचने वाले प्रोटीन उच्च मात्रा में होते हैं।
- खरगोष के मीट में सबसे कम वसा (9.2 ग्राम/100 ग्राम) की मात्रा होती है इसलिए यह ह्रदय की बीमारी के मरीजों के लिए सुरक्षित एवं अत्यंत लाभकारी है।
- कैल्शियम (21 मि.ग्रा./100 ग्रा.) और फास्फोरस (347 मि.ग्रा./100 ग्रा.) की मात्रा भी खरगोश के मीट में ज्यादा होती है।

खरगोश के फर के फायदे

- खरगोश का फर सामान्य ऊन के मुकाबले 6–8 गुना ज्यादा गर्म होता है।
- खरगोश के फर को सिल्क, पोलिएस्टर, नायलोन और भेड़ की ऊन के साथ मिलाकर प्रयोग कर सकते है।

खरगोश पालन से सम्बंधित महत्वपूर्ण जानकारी इस प्रकार है :–

(क) खरगोश की प्रजातियाँ

- भारी वजन वाली प्रजातियाँ – इनका वजन लगभग 5 किलोग्राम होता है जैसे कि व्हाईट जायंट, ग्रे जायंट, फ्लैमिश जायंट, सोवियत चिनचिला आदि।
- मध्यम वजन वाली प्रजातियाँ – इनका वजन लगभग 3–5 किलोग्राम होता है जैसे कि न्यूजीलैंड व्हाईट, न्यूजीलैंड रेड, कैलीफोर्नियन आदि।
- कम वजन वाली प्रजातियाँ – इनका वजन लगभग 2–3 किलोग्राम होता है जैसे कि डच इत्यादि।

(ख) खरगोश के लिए जगह का चुनाव

खरगोश पालन के लिए ज्यादा जगह की आवश्यकता नहीं होती है। एक पाऊंड के खरगोश के लिए 3–4 स्क्वायर फीट जगह की जरुरत होती है। इसके लिए घर में ही एक छोटा सा पिंजरा बनाकर उसी में खरगोश पालन कर सकते है। खरगोशों को तेज धूप, वर्षा, कुत्ते, बिल्ली आदि से बचाने के लिए भी पिंजरा जरुरी है।

खरगोश पालन में दो तरह के घरों का प्रयोग किया जा सकता है :–

(1) डीप लिटिर प्रणाली– अगर कम संख्या में खरगोश पालन करना है तो इस तरीके को अपना सकते है। 1 नर खरगोश को 10 मादा खरगोश के लिए प्रयोग करना चाहिए।

(2) पिंजरा प्रणाली– यह अलग प्रजातियों और आकारों के खरगोशों के लिए है। (i) बड़े खरगोशों के लिए पिंजरे को 2–5 फीट लम्बा, 1.5 फीट चौड़ा और 2.5 फीट ऊँचा रखना होता है। इसमें एक या दो खरगोश रख सकते है। (ii) मध्यम वजन वाली प्रजातियों के लिए 24X24 इंच का पिंजरा होना चाहिए। (iii) भारी वजन वाली प्रजातियों के लिए 30 इंच गहरा और 36 इंच चौड़ा पिंजरा होना चाहिए।

पिंजरे की ऊँचाई 18 इंच होनी चाहिए। पिंजरे की छत और दिवारों पर लगी जाली 1X2 इंच के आकार की होनी चाहिए। पिंजरे के फर्श पर 1.5 इंच की जाली

लगानी चाहिए। पिंजरे का दरवाजा उपयुक्त आकार का होना चाहिए। नर खरगोश का पिंजरा 30x30 इंच का होना चाहिए। मादा खरगोश का पिंजरा 12x12 इंच का होना चाहिए।

नेस्ट बॉक्स बढ़ते हुए खरगोशों के लिए जरुरी होता हैं। इस पिंजरे को लोहे का या फिर लकड़ी का बनाया जाता है। नेस्ट बॉक्स 18 इंच लम्बा, 18 इंच चौड़ा और 18 इंच ऊँचा होना चाहिए। खरगोश के पिंजरे को फर्श से 3–4 इंच ऊपर बनाना चाहिए और पिंजरे की स्तह पानी रहित होनी चाहिए। खरगोशों को ठण्ड से बचाने के लिए पिंजरे में अखबार या कागज के गत्तों का प्रयोग भी कर सकते है।

(ग) खाद्य और जल प्रबंधन

- खरगोश साधारण खाना खाता है जैसे कि गेहूँ का चोकर, गाजर, गोभी के पत्ते, पालक व हरी पत्तियाँ आदि।
- खरगोश को एक दिन में 150 ग्राम खाना और 50 ग्राम हरा चारा जरुर देना चाहिए। खरगोश एक दिन में कम से कम 70–100 मि.ली. पानी पीते है।

खरगोश के खाने पीने सम्बंधित महत्वपूर्ण बातें

- खरगोशों को खाना देने का एक निश्चित समय होना चाहिए।
- दिन के समय में तापमान ज्यादा होने के कारण खरगोश ज्यादा नहीं खा सकते इसलिए उन्हें रात में हरा चारा जरुर देना चाहिए।
- पीने के लिए उबला हुआ पानी ठंडा करके देना चाहिए।

(घ) गर्भवती खरगोश की देखभाल

- मादा खरगोश 5–6 महीने की उम्र के बाद ही बच्चों को जन्म देना शुरु कर देती है और एक बार में 8–10 बच्चों को जन्म देती हैं। मादा खरगोश 12 महीने बच्चे देती हैं।
- नर खरगोश को एक साल की उम्र के बाद ही प्रयोग करना चाहिए।
- गर्भवती खरगोश को अन्य खरगोशों से 50 से 100 ग्राम ज्यादा खाना खिलाना चाहिए।
- गर्भवती खरगोश के पिंजरे में बिछाने के लिए सूखे नारियल के रेशे का प्रयोग करना चाहिए।

- गर्भवती खरगोश अपने शरीर के बालों को तोड़कर किडलिंग के एक दो दिन पूर्व नवजात के लिए एक नेस्ट बनाती है। इस समय मादा खरगोश को परेशान नहीं करना चाहिए।
- किडलिंग 15–30 मिनट की अवधि में समाप्त हो जाती है।
- मरे हुए बच्चों को नेस्ट बॉक्स से हटा देना चाहिए।

स्वस्थ खरगोश के लक्षण

- स्वस्थ खरगोश के बाल चमकीले होते है।
- स्वस्थ खरगोश की आँखे चमकीली दिखती है।
- स्वस्थ खरगोश खाना ठीक से खाता है।
- स्वस्थ खरगोश का भार भी तेजी से बढ़ता है।

बीमार खरगोश के लक्षण

खरगोश विभिन्न प्रकार के परजीवी से संक्रमित हो सकते है। आमतौर पर आँत परजीवी, श्वास की बीमारियाँ और बाह्य परजीवी से संक्रमित हो सकते है।

- बीमार खरगोश कमजोर दिखाई देता है।
- बीमार खरगोश का वजन घटने लगता है।
- बीमार खरगोश के बाल तेजी से गिरने लगते है।
- बीमार खरगोश खाना, खाना कम कर देते है।

रोग नियन्त्रण

- खरगोश का घर हवादार जगह पर बनाना चाहिए।
- घर के चारों तरफ पेड़–पौधे लगाने चाहिए।
- पिंजरा हमेशा साफ करते रहना चाहिए।
- गर्मी के समय में पानी छिड़कते रहना चाहिए।
- आँत परजीवी के नियन्त्रण के लिए खरगोश के खाने में कोक्सिडियोस्टेट का प्रयोग करना चाहिए।

भेड़-बकरियों में (कन्टेजियस ऐक्थाइमा) मुँहा रोग

राजेश सिंगाठिया एवं सुभाष खरब*
पशु चिकित्सा प्रशिक्षण एवं अनुसंधान केन्द्र, चूरु, राजस्थान
पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर
*पशु चिकित्सक, हरियाणा सरकार

इस रोग को मौहा, मुँहा रोग, सोर माउथ, स्कैबी माऊथ, कंटेजियस पोस्टूलर डेरमेटाइटिस के नाम से भी जाना जाता है। सामान्यतः इस रोग में मृत्यु दर कम होती है, परन्तु रोगी पशु का उत्पादन बहुत कम हो जाता है, जिसकी वजह से पशुपालक को काफी आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। यह रोग उन मनुष्यों को भी प्रभावित कर सकता है जो लगातार भेड़ों के सम्पर्क में रहते हैं।

रोग का कारण– यह एक छूत का विषाणु (*पेरापोक्स* विषाणु) जनित रोग है जो कि एक महामारी के रुप में आता है और मुख्य रुप से भेड़ व बकरियों को प्रभावित करता है। यह रोग मुख्यतः बच्चों को ज्यादा प्रभावित करता है। यह रोग पशुओं में मुख्यतः सर्द ऋतु में होता है।

रोग का फैलाव– इस रोग के विषाणु रोगी पशु के सम्पर्क, संक्रमित आहार व संक्रमित पानी के ग्रहण करने से स्वस्थ बकरियों में प्रवेश कर जाते है।

रोग के लक्षण– इस रोग में रोगी पशु में निम्नलिखित लक्षण पाए जाते हैं :–

- रोगी पशु को तेज बुखार हो जाता है।
- पशु को भूख नहीं लगती है और पशु सुस्त हो जाता है।
- पशु के आँख व नाक से पानी टपकता है।
- तत्पश्चात् पशु के होंठ और नथूनों के आसपास लालिमायुक्त दाने बनने लग जाते हैं जो बाद में फोड़े में बदल जाते हैं और इन फोड़ों के काफी बढ़ जाने से रोगी पशु का मुँह फूल जाता है। तत्पश्चात् यह फोड़े पपड़ी में बदल जाते है। इन फोड़ों की वजह से बच्चे दूध नहीं पी पाते और शारीरिक रुप से काफी कमजोर हो जोते है।
- इस रोग में गम्भीर रुप से ग्रसित पशु में रोग प्रतिरोधक क्षमता काफी कम हो जाती है जिसके परिणामस्वरुप अन्य जीवाणु जनित रोग से पशु प्रभावित होकर मौत का शिकार भी हो सकता है।
- कई बार पशुपालक कंटेजियस ऐक्थाइमा और माता रोग को एक जैसा समझ लेते है लेकिन इन दोनो को आसानी से पहचाना जा सकता है। माता रोग में पशु के पूरे शरीर पर फुंसिया व घाव होते है जबकि कंटेजियस

ऐक्थाइमा रोग में मुख्य रुप से होंठ और नाक के आसपास ही पपड़ी/खुरंट/फुंसी/घाव होते है।

रोग का बचाव एवं उपचार– पशुपालक इस रोग से प्रभावित पशुओं को लक्षणों के आधार पर आसानी से पहचान सकते है। रोग की सही पहचान कर के बीमार पशुओं का प्रबंधन कर सकते हैं व अन्य स्वस्थ पशुओं को इस रोग से बचा सकते है। इस रोग से बचाव के लिए निम्न बातों का विशेष ध्यान देना चाहिए –

- बीमार भेड़–बकरियों को स्वस्थ पशुओं से तुरंत अलग कर देना चाहिए। रोगी पशु के खानपान की व्यवस्था भी अलग से करनी चाहिए और बीमार पशु को नरम चारा देना चाहिए। सर्दी से समुचित बचाव कर रोगी पशु को अत्यधिक तनाव से भी बचाना चाहिए।
- इस रोग के लक्षण दिखते ही तुरंत पशु चिकित्सक से सम्पर्क करना चाहिए और पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार अधिक बीमार पशु का पाँच दिन तक प्रतिजैविक (एन्टीबायोटिक) दवाओं के टीकें लगवाने चाहिए ताकि द्वितीय जीवाणुजनित रोगों से रोगी पशु को बचाया जा सके।
- रोगी पशु के मुँह एवं नाक के आसपास की फुन्सीयों/दानों/घावों को लाल दवा (पौटेशियम परमैग्नेट) के हल्के घोल से साफ कर रोगाणु रोधक दवा (एंटीसेप्टिक क्रीम) का मलहम लगा देना चाहिए। इन घावों पर मक्खी इत्यादि को बैठने से रोकना बहुत जरुरी है अन्यथा इन घावों में कीड़े पड़ सकते हैं जिससे पशु को बहुत परेशानी होती है।

भेड़-बकरियों में फिड़किया रोग एवं रोकथाम

राजेश सिंगाठिया एवं सुभाष खरब*
पशु चिकित्सा प्रशिक्षण एवं अनुसंधान केन्द्र, चूरु, राजस्थान
पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर
*पशु चिकित्सक, हरियाणा सरकार

इस रोग को 'एन्ट्रोटाक्सीमिया', 'जहरीले दस्त' व 'अधिक भोजन विषाक्ता' के नाम से भी जाना जाता है। यह रोग भेड़ व बकरियों में होने वाली एक प्रमुख बीमारी है। भेड़ों में इस रोग का प्रकोप दूसरे पशुओं से अधिक हैं। यह बीमारी स्वस्थ भेड़ बकरियों में मुख्यतः वर्षा ऋतु (जुलाई–अगस्त) में होती है। यह रोग पशुओं में जीवाणु विषाक्त से उत्पन्न होता है। कहावत है कमजोर शरीर बीमारी का घर परन्तु इन विषाक्त वाले रोगों में स्थिति विपरीत है। सबसे अच्छे एवं तन्दुरुस्त पशु इन रोगों के अधिक शिकार होते है। इस रोग में लक्षण प्रकट होने का समय नहीं मिलता है। पशु की अचानक मृत्यु हो जाती है। शाम को पशु जंगल से ठीक प्रकार चर कर आते है और सुबह तक मृत पाये जाते है। यह रोग बहुत अधिक खतरनाक और खास तौर पर भेड़ पालकों की कमर तोड़ने वाला है। प्रातः जब भेड़ पालक उठता है तो पूरा रेवड़ मौत की नींद सो चूका होता है। गरीब और खास तौर पर घुमक्कड़ भेड़ पालकों को यह चोट जबरदस्त आर्थिक हानि देती है।

रोग के कारण

- यह एक असक्रांमक रोग है जो एक जीवाणु (*क्लोसट्रिडियम परफ्रिजेन्स*) से होता है। इस रोग के जीवाणु शरीर में ही रहते है और विशेष परिस्थितियों में ये विष उत्पन्न करके रोग पैदा करते है। यह रोग भेड़–बकरी की प्रत्येक नस्ल, आयु तथा लिंग के पशु को प्रभावित करता है।
- अधिक प्रोटीन युक्त खुराक लेने अथवा ताजी फसल कटे हुए खेतों में चराने से यह बीमारी अधिक होती है। सरसों व चनें की कटाई के तुरन्त बाद खाली खेतों में बकरियों/भेडों को चराना सबसे अधिक हानिकारक होता है क्योंकि टूटी हुई सरसों/चनें की फलियाँ भेड़–बकरियाँ अधिक खा लेती है जिससे प्रोटीन युक्त

खुराक बढ़ जाती है और यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण इस रोग को 'अधिक भोजन विषाक्ता' कहते है यह यह रोग अधिक प्रोटीन युक्त खुराक के प्रारम्भ करने के 15–20 दिन बाद में होता है।

- अन्तः परजीवियों का अधिक संक्रमण भी इस रोग के जनन में सहायक होता है।

रोग के लक्षण

- रेवड़ का सबसे स्वस्थ मेंमना पहले प्रभावित होता है।
- रोगी पशु जमीन सुंघने लगता है तथा ऐसा दिखाई देता है जैसे पशु चर रहा हो।
- साधारणतः रोगी पशु में आफरा आ जाता है। रोगी पशु की माँसपेशियों में खिंचाव आ जाता है एवं पशु अपने सिर को दीवार या खम्भे से मारता है।
- आँखे चौकन्नी नजर आती है और मुँह से झाग निकलता है।
- उत्तेजना के दौरान शरीर का तापमान भी बढ़ जाता है।
- पशु जल्दी–जल्दी साँस लेता है और अधिक ध्यान देने पर माँसपेशियों में फड़कन (कम्पन) सी दिखाई देती

है। इसी कारण इस रोग को फिड़किया रोग कहते है।

- पशु में दस्त लग जाते है तथा दस्त के साथ खून भी आता है। इसीलिए इस बीमारी को जहरीले दस्त के नाम से जाना जाता है।
- पेट में तीव्र दर्द होता है जिसके कारण पीड़ित भेड़/बकरी बेचैन होकर उछलने, कुदने एवं तडफने लगती है। पेट में दर्द के कारण बकरी पीछले पैर मारती है तथा लेटे–लेटे साइकिल चलाने की तरह रोगी पशु की टाँगे चलती रहती है और धीरे–धीरे बकरी सुस्त होकर मर जाती है यही इस रोग का प्रमुख लक्षण है। इन लक्षणों के प्रकट होने के दो–तीन घंटे में पशु की मृत्यु हो जाती है।
- शव परीक्षण के दौरान पेशाब में ग्लूकोज पाया जाता है।
- आँतों में सूजन व रक्त स्त्राव के निशान मिलते है।

रोग का बचाव एवं उपचार–

बीमारी के लक्षण प्रकट होने के बाद इस बीमारी में औषधियों का विशेष असर नहीं होता। अतः रोग से बचाव हेतु निम्न उपाय अपनाने चाहिए :–

- यह बीमारी प्रायः वर्षा ऋतु में होती है इसलिए ग्रीष्म ऋतु में इस बीमारी से बचने के टीके लगवाने चाहिये। इस रोग से भेड़–बकरियों को बचाने हेतु निकटवर्ती पशु चिकित्सालय में प्रतिवर्ष फरवरी से मार्च माह में इसका रोग निरोधक टीका लगवाना चाहिए। पहली बार टीका लगे पशुओं को बुस्टर खुराक हेतु 15 दिन के अन्तर पर फिर से टीका लगवाना चाहिए। यह टीके प्रसव के 2–4 सप्ताह पहले लगाने से मादा के

साथ–साथ नवजात में भी रोग से बचाव की शक्ति आ जाती है।

- जिन क्षेत्रों में बीमारी का प्रकोप बढ़ रहा हो उन क्षेत्रों में चराने के घंटों (समय) में कमी कर देनी चाहिए। चराई के समय ध्यान रखे पशु सामर्थ्य से अधिक ना खाए।
- वर्षा ऋतु पशुओं को अधिक प्रोटीन युक्त चारा व बाँट अधिक ना खिलायें। ताजी फसल कटे खेतों में पशुओं को कम समय तक चराना चाहिए।
- शाम को बाड़े में बन्द करते समय प्रत्येक भेड़ बकरी का निरीक्षण कर लेना चाहिये। यदि किसी भेड़ बकरी का पेट फूला हुआ लगे तो 10–20 ग्राम मीठा सोडा देना चाहिए।
- रोग के लक्षण उत्पन्न होते ही भेड़ को पोटैशियम परमेंगनेट पानी में घोल कर पिलाने से भी पशु को लाभ मिलता है।
- बीमार पशुओं को समूह से अलग कर देना चाहिए।
- बीमार पशुओं को उचित एन्टीबायोटिक देकर बचाया जा सकता है।

मनुष्य आहार में दूध की उपयोगिता

सज्जन सिंह[1] एवं दलजीत सिंह[2]
[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, [2]पशु प्रजनन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में अधिकतर लोग शाकाहारी हैं। शाकाहारी के लिए दूध और दुग्ध पदार्थ भोजन में प्रोटीन की कमी को दूर करने का एकमात्र साधन है। दूध पौष्टिकता का मूल आधार है। हमारे सामान्य जीवन में दूध, घी, मक्खन, पनीर, छाछ एवं दही आदि के प्रयोग का विशेष महत्व है। दूध एक ऐसा पदार्थ है, जिससे मनुष्य एवं पशुओं का जीवन प्रारम्भ होता है। हमारे दैनिक आहार में दूध एक उत्तम एवं आवश्यक खाद्य पदार्थ है। इनमें सभी पौष्टिक तत्व उचित मात्रा में पाए जाते है। इसलिए दूध को सम्पूर्ण आहार माना गया है, तथा मानव पोषण में दूध की भूमिका अग्रणीय रही है। दूध के मुख्य घटक सभी स्तनपायी जानवरों में विद्यमान होते है। केवल उनके अनुपात में भिन्नता पाई जाती है। दूध में प्रोटीन, वसा, दूध शर्करा, खनिज लवण तथा विटामिन पाए जाते है।

प्रोटीन– भैंस के दूध में 4.2 प्रतिशत प्रोटीन व गाय में 3.3 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है। यह प्रोटीन (कैसीन) उच्च कोटि का होता है। दूध के दो मुख्य घटक कैसीन तथा सीरम प्रोटीन होते है। सीरम प्रोटीन में एल्ब्यूमिन तथा ग्लोब्यूलीन मुख्य होते है।

दूध वसा– गाय के दूध में 3.5–4.7 प्रतिशत और भैंस के दूध में 6–8 प्रतिशत वसा होती है। देश में घी उद्योग एवं आईसक्रीम उद्योग दूध वसा पर ही निर्भर करता है तथा दूध पदार्थों में विशिष्ट स्वाद एवं सुगंध के लिए वसा का महत्वपूर्ण योगदान है।

दूध शर्करा– दूध की शर्करा (लैक्टोज) बच्चों में दिमागी बढ़ोत्तरी व पाचन में विशेषकर लाभकारी है। भैंस के दूध में शर्करा 4.9 प्रतिशत व गाय के दूध में 4.1–4.9 प्रतिशत होती है। दूध शर्करा का दूध की मिठास एवं ऊर्जा में विशेष योगदान होता है। दूध की किण्वण प्रक्रिया में सूक्ष्म जीवाणु लैकटोज को तोड़कर ही लैक्टिक एसिड बनाकर दूध में अम्लता पैदा करते हैं। जिससे दूध के विभिन्न व्यंजन जैसे दही, योघर्ट तथा चीज इत्यादि बनते है। शिशु पोषण के लिए बनने वाले दूध व्यंजनों में दुग्ध शर्करा की विशेष भूमिका होती है।

खनिज लवण– दूध में लगभग 0.7 से 0.8 प्रतिशत खनिज लवण होते है। दूध में प्रमुख रुप से कैल्शियम और फास्फोरस अच्छी मात्रा में पाए जाते है। जो हड्डियों व दाँतों के निर्माण के लिए लाभदायक है। भैंस के दूध में कुल फास्फोरस की मात्रा 0.12 से 0.13 तक है जबकि देसी गाय में यह मात्रा 0.10 से 0.12 प्रतिशत होती है। कैल्शियम और फास्फोरस के अलावा अन्य महत्वपूर्ण खनिज लवण सोडियम, पोटाशियम, क्लोराईड, सल्फेट, आयरन, कापर, जिंक, एल्यूमिनियम, मैंगनीज, लैड, मोलीबडिनम तथा सिलिकोन है।

विटामिन– दूध विटामिन ए, डी, ई, थाइमीन एवं राइबोफलेविन का अच्छा स्त्रोत है। परन्तु विटामिन सी की मात्रा हमारी आवश्यकता के अनुसार अत्यधिक कम होती है। सामान्य वृद्धि, अच्छे स्वास्थ्य एवं प्रजनन के लिए विटामिन अति आवश्यक है।

दूध आहार का प्रमुख हिस्सा है। बदलते मौसम के अनुसार हम खानपान के तरीकों में बदलाव करते है ताकि

मौसम के अनुसार खुराक ले सकें। जैसे गर्मियों में ठंडा भोजन व सर्दियों में गर्म खुराक ताकि ठण्ड से बच सकें। सर्दी के मौसम में दूध व दूध से बने उत्पादों का सेवन अत्यंत लाभकारी है। आइए जाने कुछ तरीके ताकि दूध को स्वादिष्ट व पौष्टिक बना सकें।

दूध का हलवा– कड़ाही में आवश्यकतानुसार घी डाल कर आधा कप सूजी भूरी होने तक भूने। अब उसमें 3 कप दूध और 3/4 कप चीनी मिलाएँ। जब यह मिश्रण कड़ाही छोड़ने लगे, तो उसमें कटे हुए बादाम, किशमिश आदि डालकर गर्मा–गर्म परोसे।

सूजी वाला दूध– एक कड़छी सूजी खाली कड़ाही में भून लें। अब उसमें एक कप दूध एवं आवश्यकतानुसार चीनी मिलाएँ। थोड़ी देर लगातार हिलाते रहे ताकि सूजी व दूध अच्छी तरह से मिल जाए।

गाजर का दूध– एक किलो गाजर धोकर बारीक कद्दूकस करें। एक कप दूध एवं एक चम्मच चीनी डालकर कूकर में एक सीटी दिलवाएँ। इस मिश्रण को थोड़ा सा घोट लें एवं उसके बाद 4–5 गिलास दूध मिलाएँ एवं स्वाद अनुसार चीनी मिलाकर अच्छे तरह से हिलाकर 5–10 मिनट उबाल लें ताकि दूध व गाजर अच्छे से मिक्स हो जाएँ। गर्मा–गर्म पौष्टिक गाजर का दूध तैयार है।

खजूर का दूध– पांच से छह खजूर धोकर बीज निकालकर बारीक काट लें। एक गिलास दूध में कटी हुई खजूर डालें और 5–6 मिनट तक अच्छी तरह से धीमी आँच पर उबालें। स्वाद अनुसार 3–4 बादाम भी काटकर डाल सकते है। यह पौष्टिक खजूर का दूध ठण्ड से राहत देता है साथ ही स्वाद से भरपूर होता है।

बेसन का शीरा– एक चम्मच देशी घी में दो चम्मच बेसन डालकर धीमी आँच पर भून लें। अब इसमें एक गिलास दूध डालकर धीमी आँच पर लगातार हिलाते हुए 5 मिनट उबालें

ताकि मिश्रण एकसार हो जाए। 4–5 बादाम बारीक कटे हुए, एक छुआरा बारीक कटा हुआ, 4–5 काजू आदि को मिलाएँ। ठण्ड से बचने के लिए यह बहुत कारगर उपाय है यदि कफ ज्यादा हो तो दूध की जगह पानी वाला बेसन का शीरा बना सकते है।

मुलट्ठी वाला दूध– एक इंच मुलट्ठी का टुकड़ा थोड़ा दरदरा करके एक कटोरी पानी में रात को भिगो दें। सुबह बच्चों के एक गिलास दूध में दो चम्मच मुलट्ठी का पानी मिलाएँ। स्वदानुसार चीनी मिलाकर प्रति दिन सर्दियों में बच्चों को पिलाएँ। इस पानी को चाय में भी मिला सकते है। यह खाँसी एवं जुकाम से बचाने के लिए लाभदायक है।

पौष्टिक पिन्नी– एक नारियल के खोपे को ऊपर से थोड़ा काटकर उसमें किशमिश भर दें। कड़ाही में इतना दूध डालें कि खोपा पूरी तरह डूब जाए। अब दूध को अच्छी तरह काड़े एवं सूखा लें। अब मिश्रण को मिक्सी में पीस लें। आटा भूनकर उसमें मिश्रण मिलाएँ व आवश्यकतानुसार देशी खाँड डालकर पिन्नी बना लें। यह पौष्टिक पिन्नी ठण्ड से बचने की अच्छी खुराक है।

इसी तरह दूध के स्वरुप को बदलकर अलग–अलग तरीकों से हम दूध का उपयोग कई व्यंजनों में करके अपने दैनिक आहार की पौष्टिक व परिपूर्ण बना सकते है।

गौवंशियों में चींचड़ी रोग (थीलेरियोसिस)

नीलम, रिक्की झांभ, राजेन्द्र यादव एवं नरेश कुमार राखा
पशु औषधि विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

दूध की बढ़ती माँग व तेजी से बढ़ रही जनसंख्या के मद्देनजर दूध व दूध जनित पदार्थों की माँग तेजी से बढ़ रही हैं। अतः इस माँग की आपूर्ति के लिए विदेशी नस्ल व संकर गायों का पालन प्रचलन में हैं। लेकिन भारत में ऊष्ण–कटिबंधीय जलवायु होने के कारण विदेशी नस्ल व संकर नस्ल के पशु कुछ बीमारियों के लिए अधिक संवेदनशील होते हैं, जिनमें चींचड़ी रोग मुख्य है। यह रोग पशुओं में स्वास्थ्य व पशुपालक के लिए आर्थिक हानि का एक बड़ा कारण है।

रोग क्या है ?

पशुओं में यह रोग चिंचड़ियों द्वारा फैलता है, जो एक रक्त–पोषित परजीवी का आदान प्रदान करती हैं। मुख्यतः यह रोग बरसात के मौसम में फैलता है, क्योंकि चिंचड़ियाँ इस मौसम में अधिक सक्रिय होती है और पशु के शरीर पर चिपक कर खून चूसती है, यदि वह पशु रोगी हो तो रोग दूसरे पशु को फैल जाता है। रोग से ग्रसित पशु या तो मर जाता है या ठीक होने के बाद सदा के लिए रोग का वाहक बन जाता है। रोग छोटी उम्र के गौवंश तथा दुधारु गायों में ज्यादातर पाया जाता है।

रोग की पहचान कैसे करें ?

1. विदेशी व संकर नस्ल के गौवंश में तेज बुखार आना। शरीर का तापमान 40–42^0 C के बीच रहता है। लगातार रहने वाले बुखार से पशु बेहाल प्रतीत होता है।
2. रोगी पशु की सतही ग्रंथियों का आकार बढ़ जाता है। इन ग्रंथियों को कान के नीचे व शरीर पर टाँगों से थोड़ा आगे की तरफ हाथ लगाकर महसूस किया जा सकता है।
3. सतही ग्रंथियों में आकार वृद्धि के साथ नाक से स्त्राव व आँखों से पानी आता है।
4. कुछ रोगी पशुओं में चमड़ी पर गांठे सी बनने लगती हैं।
5. पशु खाना–पीना बंद कर देता है। परन्तु देखा गया है कि कुछ पशु मृत्यु परंत जुगाली करते रहते हैं।
6. पशु सुस्त हो जाता है।
7. दुधारु पशुओं का दूध कम हो जाता है और काम करने वाले पशु की कार्यक्षमता कम हो जाती है।
8. ब्याने के 20–25 दिनों के अंदर गायों में यह रोग ज्यादा मिलता हैं, क्योंकि इस समय पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती है।
9. रोगी पशु कुछ दिनों बाद कमजोर हो जाता है तथा खून की कमी के लक्षण जैसे जल्दी हाँफना, आँखों का पीलापन या निस्तेज होना आदि दिखाई पड़ते हैं।
10. पशुओं के दस्त में कभी–कभी रक्त और श्लेष्मा (म्युकस) भी पायी जाती हैं।
11. अति प्रभावित पशुओं के फेफड़ों में सूजन आ जाने के कारण श्वास लेने में कठिनाई से रोगी पशु की मृत्यु हो जाती है।

उपचार

1. नजदीकी पशु चिकित्सक से परामर्श कर रोग का तुरंत उपचार कराएँ।
2. परजीवी उन्मूलन के लिए बहुत असरकारक दवा उपलब्ध है, जिसे पशु चिकित्सक से परामर्श उपरान्त पशु को लगवाएँ।
3. रक्तवर्धक तशा लीवर टॉनिक रोगी पशु के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है।

निदान

1. यह रोग चिंचड़ियों द्वारा फैलता है अतः चिंचड़ियों की रोकथाम करने से रोग को फैलने से रोका जा सकता है।
2. बाड़े में फर्श एवं दीवारों की दरारों का बंद कर कीटनाशकों के छिड़काव से चिंचड़ियों को नष्ट करने में सहायता मिलती हैं।
3. बीमार पशु को अन्य पशुओं से अलग रखना चाहिए।
4. रक्तवर्धन के लिए फेरस सल्फेट (10 ग्राम) व कॉपर सल्फेट (5 ग्राम) को 500 ग्राम गुड़ में मिलाकर प्रतिदिन खिलाने अथवा अश्वगंधा की पत्तियों या जड़ के 20 ग्राम चूर्ण को 250 ग्राम गुड़ के साथ दिन में एक बार एक सप्ताह तक खिलाना उपयोगी है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. टोल-फ्री हेल्पलाईन सेवा (1800-180-1184)
3. निःशुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

पशुपालन में परंपरागत ज्ञान का महत्व एवं उपयोगिता

दिपिन चन्द्र यादव[1], दिनेश गुलिया[2] एवं देवेन्द्र सिंह[3]

[1]पशु उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, [2]पशु औषधि विज्ञान विभाग एवं [3]विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

परंपरागत ज्ञान के संदर्भ में बहुत–सी व्याख्याएँ दी गई है। यह ज्ञान का वह भंडार है जो अनुभव, अभ्यास एवं सांस्कृतिक आधार पर मनुष्यों के आपसी एवं उनके वातावरण के सम्बंधों की जटिलता को समझकर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अंतरित किया जाता है। एक प्रचलित कहावत है– "एक ज्ञानी वृद्ध पुरुष की मृत्यु, समस्त पुस्तकालय का अदृश्य होना है"।

महत्व

- सामाजिक संपोषणता के लिए उपयोगी है।
- उत्पतिमूलक संसाधनों के अनुरक्षण के लिए आवश्यक हैं।
- परंपरागत ज्ञानधारक एवं संप्रदाय के उत्थान के लिए जरुरी है।
- देश की अर्थव्यवस्था के लिए भी हितकारी है।
- वातावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका है।

स्वरुप

- सामूहिक संपति का वह स्वरुप है जो गतिशील है, जो एक संस्कृति से दूसरी को विनिमय होती है।
- समाज एवं प्रकृति के प्रति सम्मान एवं उतरदायित्व का सूचक है।
- कोई दुष्प्रभाव नहीं है।
- स्थानीय उपलब्धता है, इसलिए किफायती है।
- उन क्षेत्रों में जहाँ पशु चिकित्सा सम्बंधी सेवाएँ सीमित है और जहाँ दवाइयों की उपलब्धता नहीं है, ऐसे क्षेत्रों में बहुत ही प्रभावी है।

परंपरागत ज्ञान के स्रोत

- किसान।
- बुजुर्ग।
- लोक साहित्य, कथाएँ, गीत इत्यादि।
- प्राचीन दस्तावेज।
- सामाजिक संस्थाएँ।
- विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित सामग्री।

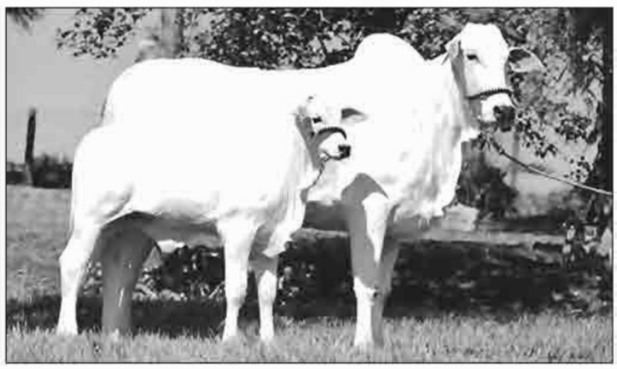

पशुपालन में परंपरागत ज्ञान के कुछ उदाहरण

- गुड़ व मेथी की आवटी
- बाजरा व मेथी
- सफेदे के पत्तों की भाप देना
- नोसादर
- हल्दी–चोट लगने पर
- काली जीरी व नींबू का रस व खाँड –थनैला रोग में
- हींग, अजवायन – अफारा, अपच में
- शतावरी
- छिल्के समेत केला

उपरोक्त नुस्खें काफी समय से देहात (ग्रामीण परिवेश) में उपयोग किये जाते है। ये तो केवल उदाहरण मात्र है, परंपरागत ज्ञान का ऐसा असीमित भंडार हमारे देश के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में विलुप्तता की कगार पर है, जिसे समय रहते संरक्षित करने की पुरजोर आवश्यकता है ताकि वैज्ञानिक शैली के साथ परंपरागत ज्ञान का समन्वय स्थापित हो सके।

ऑर्गेनिक ब्रॉयलर मीट उत्पादन

देवेन्द्र बिढ़ाण[1], दिपिन चन्द्र यादव[1] एवं दिनेश गुलिया[2]
[1]पशु उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, [2]पशु औषधि विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

ऑर्गेनिक पोल्ट्री/कुक्कुट उत्पादों का बाजार तेजी से उन्नति कर रहा है। इसके अंतर्गत चूजों का पालन, उनका राशन, रख–रखाव एवं स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याओं का समाधान इत्यादि सभी कार्य ऑर्गेनिक पद्धति द्वारा जन्म के दूसरे दिन से ही प्रारम्भ किए जाने चाहिए।

ऑर्गेनिक फार्मिंग में बाह्य इनपुट जैसे कि रासायनिक खाद, एंटीबॉयोटिक आदि की आवश्यकता नहीं होती है। ऑर्गेनिक फार्मिंग विशेष रुप से ईको सिस्टम प्रबंधन पर निर्भर करती है। चिकन सबसे महत्वपूर्ण ऑर्गेनिक मीट माना जाता है क्योंकि इसका उत्पादन चक्र अन्यों के मुकाबले छोटा है। इस वजह से इसकी सप्लाई तेजी से बढ़ाई जा सकती है।

ऑर्गेनिक पोल्ट्री उत्पादन में पक्षियों को खुले वातावरण में घूमने फिरने की आजादी होनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि वो स्थान/जमीन जहाँ पक्षी घूमते है, वो ऑर्गेनिक रुप से प्रमाणित होनी चाहिए। पोल्ट्री राशन पूर्ण रुप से ऑर्गेनिक होना चाहिए। कृत्रिम खाद्य पदार्थ या अन्य सामग्री के उपयोग की अनुमति नहीं दी जाती है।

पोल्ट्री फीड में किसी भी प्रकार का माँस का बचा हुआ उत्पाद उपयोग करना प्रतिबंधित है। हॉर्मोन एवं एंटीबॉयोटिक दवाओं का उपयोग भी निषेध है। बीमारियों का बचाव महत्वपूर्ण है, न कि उनका इलाज।

स्वास्थ्य सम्बंधी उपयोग में होम्योपेथी, जड़ी–बूटियों इत्यादि का उपयोग किया जा सकता हैं।

- ❖ पोल्ट्री में टीकाकरण की अनुमति होती है।
- ❖ बिछावन ऑर्गेनिक रुप से प्रमाणित होना चाहिए।

पोल्ट्री उत्पादकों को सभी गतिविधियों का हिसाब एवं लेखा–जोखा तैयार करना चाहिए। साथ ही अपने उत्पादों को एजेंसी से ऑर्गेनिक उत्पाद के रुप में प्रमाणित करवाना चाहिए।

आवश्यकताएँ एवं शर्तें:

1. ऑर्गेनिक मीट के लिए पोल्ट्री पालन खुली जगह में किया जाना चाहिए।
2. पोल्ट्री पालन पिंजरों में करना निषेध है।
3. उत्पादक को 'आल इन आल आउट' विधि का अनुसरण/पालन करना चाहिए।
4. पोल्ट्री राशन ऑर्गेनिक गुणवता के लिए प्रमाणित होना चाहिए।
5. स्थानीय वातावरण के अनुसार उपयुक्त नस्ल का चुनाव करना चाहिए।
6. स्थानीय ब्रीडस का चयन उपयुक्त है।
7. उत्पादक को प्रमाणित इकाई से मान्यता प्राप्त होनी चाहिए तभी वह ऑर्गेनिक मीट की बिक्री या उत्पादन कर सकता है। इसके बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करके सभी औपचारिकताएँ पूर्ण करनी चाहिए। इससे सम्बंधित जानकारी राष्ट्रीय ऑर्गेनिक प्रोग्राम के तत्वाधान में प्राप्त की जा सकती है।
8. उत्पादन प्रणाली द्वारा पानी या मिट्टी का प्रदूषण नहीं होना चाहिए।
9. ऑर्गेनिक मीट उत्पादन में ये सुनिश्चित करे कि पक्षियों

को किसी भी प्रकार के तनाव का सामना न करना पड़े।

10. चोंच काटना निषेध होता है।
11. ऑर्गेनिक मीट सेक्टर में पक्षियों को लगभग 81 दिन के लिए पाला जाता हैं।
12. राशन ऑर्गेनिक रुप से प्रमाणित एवं संतुलित होना चाहिए।

समस्याएँ

1. उपभोक्ताओं में जागरुकता का अभाव।
2. आर्थिक समस्याएँ, अपर्याप्त प्रमाणित एजेंसियाँ एवं मार्केट चेनल का अभाव।
3. ट्रेनिंग सुविधाओं का अभाव।

निष्कर्ष– उपभोक्ताओं की खाद्य सुरक्षा एवं गुणवता के विषय में बढ़ती जागरुकता एवं उनकी आवश्यकता की पूर्ति हेतु ऑर्गेनिक ब्रॉयलर मीट उत्पादन एक कारगर विकल्प है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

नि:शुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु- 1800-180-1184 (टोल-फ्री)

सोम, बुध, शुक्र (सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

घोड़ों में ग्लैंडर्स/फारसी: लक्षण, चिकित्सा एवं रोकथाम

अनीता दलाल[1], कमलदीप[2], अनिका मलिक[3] एवं सरिता[1]
[1]पशु चिकित्सा सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, [2]पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग
[3]पशु चिकित्सा एवं पशुपालन विस्तार शिक्षा विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

ग्लैंडर्स (फारसी) घोड़ों, खच्चर एवं गधों में होने वाला एक संक्रामक जीवाणु जनित रोग है। यह बीमारी प्राचीनतम बीमारियों में से एक है। विभिन्न देशों जैसे ईराक, टर्की, पाकिस्तान, भारत, मंगोलिया, चीन एवं ब्राजील, संयुक्त अरब अमीरात अन्य देशों में पशुओं में यह रोग पाया जाता है।

यह मनुष्यों में संक्रमित पशुओं से होने वाला प्राणघातक पशु जन्य रोग है। मुख्यतः यह रोग उग्र तथा मंद रूप में सांस की नलियों, फेफड़ों एवं त्वचा में व्रण (अल्सर) युक्त गाँठों के रूप में पाया जाता है। यह बीमारी घोड़ों, गधों/खच्चर में उग्र रूप में होती है।

यह रोग ***बर्कहोलडेरिया मैलयाई*** नामक जीवाणु से होता है। यह बीमारी मुँह व साँस के रास्ते से फैलती है। नम वातावरण में यह बीमारी होने की आशंका बढ़ जाती है, क्योंकि ऐसे मौसम में इस जीवाणु के पनपने की क्षमता अधिक होती है।

लक्षण:

इस बीमारी से ग्रसित पशु में तीव्र ज्वर (106° F), खाँसी, नाक की नली में अल्सर तथा उदर व पैरों की त्वचा में गाँठे इत्यादि पाई पाती हैं। ग्रसित पशु की कुछ ही दिनों में सेप्टिसीमिया के कारण मृत्यु भी हो जाती है। फेफड़ों में संक्रमण होने के कारण निमोनिया, खाँसी, नाक से खून बहना व साँस लेने में भी कठिनाई होती है। फेफड़ों में गाँठों के फूटने से ऊपरी नाक की नली में भी लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

इसी बीमारी को 'फारसी' कहते हैं, जिसमें त्वचा प्रारूप में एक से दो से.मी. गाँठे खासकर पैरों की लिंक नलियों में

पाई जाती है। इन फारसी गाँठों के फूटने के पश्चात् अति संक्रामक एवं चिपचिपा मवाद व गाँढ़े शहद जैसा स्राव त्वचा से निकलता है। इसमें पहले नाक से पानी जैसा और बाद में रक्तयुक्त मवाद जैसा स्राव होता है।

चिकित्सा:

ग्लैंडर्स मनुष्यों में फैलने वाला संक्रामक रोग है इसलिए इसके उपचार की सलाह नहीं दी जाती है। जरुरत पड़ने पर सल्फाडीमिडीन दवाई का प्रयोग करना चाहिए।

रोकथाम:

ग्लैंडर्स एक अधिसूचित रोग है। मैलीन जाँच द्वारा त्वरित निदान सम्भव है। (1) प्रत्येक 3 सप्ताह पर घोड़ों की तब तक मैलीन जाँच आवश्यक है जब तक सभी प्रतिघातों की पहचान करके उन्हें नष्ट न कर दिया जाए। (2) सभी अस्तबलों एवं देश के प्रवेश स्थानों पर कठोर विलगंन सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए। (3) जिन स्थानों पर ग्लैंडर्स से ग्रसित पशु पाए जाते है वहाँ सख्त विसंक्रमीकरण कार्यक्रम अति आवश्यक है। (4) संक्रात्मक प्रतिघातकों को भारतीय ग्लैंडर्स एवं फारसी अधिनियम के तहत ही नष्ट किया जाना चाहिए।

पशुओं में जूएँ एवं किलनियों का संक्रमण- लक्षण, चिकित्सा एवं रोकथाम

कमलदीप[1], अनीता दलाल[2], अनिका मलिक[3] एवं रचना[4]

[1]पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, [2]पशु चिकित्सा सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग

[3]पशु चिकित्सा एवं पशुपालन विस्तार शिक्षा विभाग, [4]डेयरी व्यवसाय प्रबंधन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

- जूएँ एवं किलनियाँ पशुओं के त्वचा पर पाए जाने वाले बाह्य परजीवी है जो पशु त्वचा से रक्त–चूषण करते है।
- जूएँ एवं किलनियाँ पशुओं को अलग–अलग मौसम में प्रभावित करती है जैसे किलनियाँ वर्षा ऋतु में व जूएँ शरद ऋतु में प्रभावित करती है।
- सभी पशुओं में इनका संक्रमण होता है।
- जूएँ शरीर से ज्यादा समय तक अलग होकर जीवित नहीं रह सकती वहीं किलनियाँ पशुओं से अलग लम्बे समय तक जीवित रह सकती है।
- ये दोनों ही परजीवी पशुओं में विभिन्न बीमारियों को फैलाने का काम करते है।
- इनके संक्रमण से पशुओं में रक्ताल्पता हो जाती है।
- जूओं व किलनियों की विभिन्न जातियाँ पशुओं में रोग फैलाती है।
- जूएँ पशुओं में पूँछ के नीचे, जंघाओं के अंदर के हिस्से, वृषण के आसपास के हिस्सों में विशेष रूप से पाई जाती है। यद्यपि वे पूरे शरीर पर कहीं भी पाई जा सकती है।
- किलनियाँ पशुओं के कानों, पूँछ के नीचे व खुरों के बीच आसानी से देखी जा सकती है।

रोग के लक्षण

- प्रभावित पशु खुद को दीवार से या किसी अन्य सख्त वस्तुओं से रगड़ते है और घाव कर लेते है।
- पशुओं में रक्त की कमी के कारण श्लेष्मिक झिल्लियों में पीलापन दिखता है।
- इनके संक्रमण से पशुओं में भूख की कमी हो जाती है और बार–बार रगड़ने से कई जगहों से शरीर के बाल उड़ जाते है।
- कई बीमारियाँ जैसे बबेसिओसिस, थाईलेरियोसिस, एनाप्लाज्मोसिस ये रोग किलनियों के द्वारा फैलते है।

चिकित्सा

- पशुओं में जूओं के प्रकोप को कम करने के लिए अधिक बाल वाले पशुओं के समय–समय पर बालों की कटाई करें।
- जूएँ व किलनियों का अधिक प्रकोप होने पर प्रभावित पशु को मैलाथियोन, डेल्टामेथ्रिन, साइपरमेथ्रिन आदि कीटनाशकों के घोल से पशु को नहलाना चाहिए।
- आइवरमेक्टिन इंजेक्शन (200 माइक्रोग्राम/कि.ग्रा. शरीर भार) से भी बाहरी परजीवीयों में राहत मिलती है।

रोकथाम

- पशुओं के बाड़े में भीड़ कम रखनी चाहिए।
- पशुओं के बाड़े को साफ–सुथरा रखना चाहिए।
- पशुओं का बाड़ा हवादार व ऐसा होना चाहिए जिसमें सूरज की किरणे आ सके।
- पशुओं के बाड़े में दीवार व फर्श में आई दरारों को बंद कर देना चाहिए ताकि किलनियों के अंडों को बनने से रोका जा सके।

पशुओं में मुख्य परजीवी रोग, लक्षण एवं निदान के उपाय

स्नेहिल गुप्ता, सत्यवीर सिंह एवं एस.के. गुप्ता
पशु चिकित्सा परजीवी विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

परजीवी अथवा पैरासाइट उन जीवों को कहा जाता है जो वस्तुतः अन्य जाति के जीवों पर निर्वाह करके उन्हें नुक्सान पहुँचाते है। रिहायस के हिसाब से परजीवी मुख्यतः दो प्रकार के होते हैः– बाहरी परजीवी व आंतरिक परजीवी।

बाहरी परजीवी :

इसमें किलनिया, चिचड़ियाँ, मक्खियाँ, जूएँ एवं खाज खारिश करने वाली बरुथियाँ आती है। बाहरी परजीवी शरीर के बाहरी भागों में रहते है तथा रक्त व अन्य द्रव्यों का सेवन करते है और सूक्ष्म परजीवियों के वितरण में मुख्य भूमिका निभाते है। आंतरिक परजीवी जिसमें फीताकृमि (टैपवार्म), गोलकृमि (निमेटोड) अथवा पत्ताकृमि (फ्लुक्स) जो शरीर के विभिन्न भीतरी भागों में निवास करते है, इसी श्रेणी में आते है। इनके अतिरिक्त मलेरिया बीमारी जैसे सूक्ष्म (एक कोशिक वाले) परजीवी भी पशुओं में पाए जाते है जिसमें बबेसिओसिस, थेलेरियोसिस व कोक्सीडियोसिस नामक बीमारियाँ होती हैं।

पशुओं के मुख्य परजीवी रोग इस प्रकार है–

1. जूण पड़ना/गेहुँआ रोग
2. पानी उतारना/बोटल जा/ओल उतारना
3. सर्रा/ट्रिपानोसोमियासिस
4. पाइका (मिट्टी खाने की बीमारी)
5. कलीले पड़ना/चिचड़िया लगना
6. खाज खारिश/मेंज/खूँठा ठोकना रोग
7. जूएँ पड़ना
8. घावों में कीड़े पड़ना/साई बैठना

1. जूण पड़ना :

जूण शब्द आम भाषा में भैंसों के कटड़ी/कटड़ों में साधारणतः पाए जाने वाले गोलकृमि के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यह बीमारी छोटे कटड़ों व बछड़ों में तीन महीने की आयु तक होती है तथा जूण ग्रसित बछड़ों में 40 दिन की आयु के बाद गोबर में 1 फीट तक लम्बे गोलकृमि आने लग जाते है। हरियाणा में भैंसों के कटड़ों के जन्म के पहले 2–3 महीनों में होने वाली मृत्यु का प्रमुख कारण जूण पड़ना है। कई बार किसान भाई बड़ी उम्र के पशुओं में भी गोबर में जूण दिखने की शिकायत करते है, परन्तु शोध करके यह पाया गया है कि वो वस्तुतः आँतों की झिल्ली मात्र होती है जो कुछ कारणवश बाहर निकल आती है। इस बीमारी के परजीवी गर्भावस्था में ही माँ से बच्चे के पेट में रक्त संचार द्वारा पहुँच जाते है या पहले 15 दिन के दूध द्वारा पहुँच जाते हैं।

प्रमुख लक्षण : तीन महीने से छोटे कट्टे/कट्टियों में मटमैले रंग के दस्त, साँस में सड़े हुए माक्खन की दुर्गंध, खाँसी एवं धाँसना मुख्यतः सुबह और शाम के समय इसके प्रमुख लक्षण है। जूणों के आँतों में मर जाने अथवा गुच्छा बना लेने से बँधा पड़ जाता है अथवा एक विशेष प्रकार का जहर (अस्कारिडोटोक्सिन) बनता है जिसके कारण पशु पैर मारने लगता है और उचित चिकित्सीय सहायता के अभाव में मर जाता है।

इलाज एवं बचाव के उपाय : जूणों से बचाव के लिए 15, 45 और 75 दिन की उम्र अर्थात् एक महीने के अंतराल पर पिपराजीन (10 ग्राम प्रति 45 कि.ग्रा. शारीरिक भार) अथवा फेनबेंडाजोल (150 मि.ग्रा. प्रति 30 कि.ग्रा. शारीरिक भार) सबसे अच्छी दवा मानी जाती है। पिपराजीन दवाई पिलाने के 6–8 घंटे बाद 50–100 मि.ली. सरसों का तेल अवश्य पिलाएँ ताकि जूण गोबर के साथ निकल जाये व कोई बँधा न पड़ पाएँ। दवाई देते समय पशु की जीभ नहीं पकड़नी चाहिए।

2. पानी उतारना (बोटल जा) :

कई जगह स्थानीय भाषा में इसे ओल उतारना भी कहा जाता है। इस रोग में गायों, भैंस, भेड़ अथवा बकरियों के जबड़े के नीचे पानी उतर आता है। यह मुख्यतः तीन प्रकार के परजीवियों द्वारा हो सकता है। लिवरफ्लूके (पत्ता कृमि), परम्फिस्टामस (पशुओं के पेट में पाये जाने वाले अनार के दाने

जैसे कीड़े) एवं ***हैमोन्कस*** (गोल कृमि)। यह तीनों प्रकार के परजीवी वस्तुतः पशुओं के रक्त पर निर्वाह करते है जिसके कारण पशुओं में खून तथा प्रोटीन की कमी हो जाती है। जिसके बाद जबड़ों के नीचे पानी उतर जाता है, दस्त लग जाते है तथा पशु कमजोर हो जाता है। वास्तव में दस्त लगना और ओल पड़ना कोई बीमारी नहीं बल्कि बहुत–सी बीमारियों में प्रकट होने वाला एक लक्षण है जिसका एक मुख्य कारण परजीवी हैं। इसके निदान के लिए गोबर की जाँच करवाएँ तथा फिर चिकित्सक की सलाह से इलाज करें। ***हैमोन्कस*** के लिए फेनबेंडाजोल (5 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शारीरिक भार) उत्तम इलाज है।

3. पाइका :

इस बीमारी में पशुओं में मिट्टी, चमड़ा व कपड़ा आदि खाने की आदत हो जाती हैं। वास्तव में इसके कई कारण हो सकते है परंतु परजीवी एवं खनिज पदार्थों की कमी इसके मुख्य कारणों में से एक हैं। पेट, आँत व जिगर में रहने वाले सभी आँतरिक परजीवी इसका कारण हो सकते है तथा सभी प्रकार एवं उम्र के पशु इससे प्रभावित होते हैं। विशेषकर छोटे पशुओं और भेड़ों को इससे बचाने के लिए दवाई और खनिज पदार्थ देना अति आवश्यक हैं।

प्रमुख लक्षण : इस रोग में पशु को बदहजमी का सामना करना पड़ता हैं। पशु कमजोर हो जाता हैं तथा उसके काम करने की शक्ति कम हो जाती है। अधिकतर रोग ग्रसित पशुओं की उत्पादन शक्ति कम हो जाती हैं। पशु मिट्टी खाना शुरु कर देता हैं।

इलाज एवं बचाव के उपाय : फेनबेंडाजोल (5 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. भार) और खनिज मिश्रण (60 ग्रा. प्रतिदिन) के सेवन से रोगी पशुओं में बहुत आराम आता देखा गया हैं। चारा खिलाने के बाद पशुओं के मुँह पर छिक्का लगाने से भी काफी लाभ मिलता हैं।

4. सर्रा :

ट्रिपैनोसोमियासिस पशुओं में रक्त परजीवी ***ट्रिपैनोसोमा*** से उत्पन्न बीमारी है, जो खून की कमी के रुप में प्रकट होती है। यह रोग अश्व, गाय, भैंस, ऊँट, श्वान एवं शूकर के साथ–साथ जंगली जानवरों और मनुष्यों में भी पाया जाती है। भेड़–बकरियों में भी यह रोग उल्लेखनीय हैं। अश्व एवं श्वान में यह रोग अति घातक, ऊँट में चिरकालिक एवं गाय–भैंस में यह रोग कभी–कभी घातक रुप में भी देखी जा सकती हैं। ***ट्रिपैनोसोमा*** का प्रसारण डास मक्खी के काटने से होता है जो परजीवियों को रक्त चुस्न के समय फैलाती हैं।

लक्षण : प्रभावित पशु का शरीर कमजोर तथा उच्च ताप का शिकार हो जाता है। गाय और भैंस में यह रोग कभी–कभी महामारी का रुप ले लेता है। अधिक घातक स्थिति में प्रभावित पशु अपने बन्धे हुए स्थान पर चक्कर लगाने लगता है।

इलाज एवं बचाव के उपाय :

एंट्रीसाइड (कुइनपैरामीने) प्रोसॉल्ट 2–3 ग्रा. प्रति व्यस्क पशु प्रभावकारी औषधि हैं। 'घोड़ा–मक्खी' भारत और दूसरी जगहों में सर्रा, के रोगोत्पादक जीवों को जानवरों में फैलाती है। डास मक्खी जहाँ बैठती हैं वहाँ से खून निकल आता हैं और फिर ये जगह बदल लेती हैं। यह समस्या संकर नस्ल की गायों में और घोड़ों में अधिक हैं। जिन क्षेत्रों में डास मक्खी पाई जाती हैं, वहाँ जाली वाले दरवाजे एवं इंसेक्टिसाइड का स्प्रे काफी लाभदायक हैं।

5. कलीले पड़ना / चिचड़ियाँ लगना :

विभिन्न प्रकार की चिचड़ियाँ खून तो चूसती हैं जिससे पशु कमजोर हो जाता हैं। इसके अतिरिक्त यह बहुत–सी बीमारियाँ जैसे कि– थैलेरियोसिस, बबेसिओसिस और अनप्लास्मोसिस भी फैलाती हैं जो कि विश्व भर में पशुओं की मुख्य बीमारियाँ हैं। विदेशी व संकर नस्ल की गायों, चिचड़ियों तथा इनसे फैलने वाले रोगों से अत्याधिक प्रभावित होती हैं। इसलिए अगर पशुओं को चिचड़ियों से बचा लिया जाए तो इन रोगों की सम्भावनाएँ भी उतनी ही कम हो जाती हैं।

6. खाज–खारिश (मेंज) :

यह बाहरी परजीवी जिसे अंग्रेजी में माईट अथवा हिंदी में 'बरुथी' कहते हैं, द्वारा फैलाएँ जाने वाला त्वचा पर होने वाला एक छूत का रोग हैं और सभी पशुओं में पाया जाता हैं। ऊँटों, घोड़ों एवं कुत्तों में यह रोग ज्यादा घातक रुप धारण कर लेता हैं और कई बार जानलेवा भी साबित होता हैं। भैंसों में बरुथियाँ आमतौर पर पहले सींग की जड़ के इर्द–गिर्द के हिस्से को प्रभावित करती हैं तथा इससे छुटकारा पाने के लिए पशु अपने सींग को खुरली या खूटें से मारता हैं। जिस कारण इस रोग को स्थानीय भाषा में 'खुन्टाठोक' भी कहा जाता है।

भेड़ों में इस खुजली को 'शीप सकेब' भी कहते हैं तथा ये भेड़ के शरीर के सभी भाग जो ऊन से ढके होते है, उन्हें प्रभावित करती है तथा प्रभावित भागों से ऊन झड़ जाती है। घोड़ों में एक अन्य बरुथी हैं जोकि पैरों को प्रभावित करती है तथा 'फुट मेंज' के नाम से जानी जाती है। यह बरुथियाँ वस्तुतः घोड़ों के घुटनों को प्रभावित करती हैं और इसके कारण घोड़े विशेषकर रात में पैर पटकते हैं तथा दीवार व खुरली से रगड़ते है और चोट खा लेते हैं।

7. जूएँ पड़ना :

जूएँ की समस्या गाँव में पहले अधिक होती थी परन्तु समय के साथ शिक्षा का स्तर बढ़ने से जूओं से पीड़ित पशुओं के दर में काफी गिरावट आयी है। फिर भी कुछ अव्यवस्थित पशुशाला और उपेक्षित पशुओं में जूओं की समस्या देखी जा सकती है। जूएँ भैंसों में सर्दियों के मौसम में ज्यादा पाई जाती है। खून पीने के अलावा खाज–खुजली के कारण पशु की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है तथा कमजोरी आ जाती है।

प्रमुख लक्षण :

उत्पादन क्षमता में भारी कमी, पशु का शरीर को दीवार से रगड़ना, शरीर में चमक की कमी, आँखों में गिड रहना तथा बालों का उलझा रहना, पेट व आँत में बालों के गोले बन जाना।

इलाज एवं बचाव के उपाय :

पशु के पूरे शरीर पर इंसेक्टिसाइड/कीटनाशक का स्प्रे करना चाहिए तथा समय–समय पर कंघी/खरहरा करना चाहिए। कंघी करने से बालों में से जूँ के अंडे निकल जाते है और साथ ही साथ रक्त का प्रवाह भी बढ़ता है। इंसेक्टिसाइड कई तरह के बाजार में उपलब्ध है। पुराने रसायन जैसे कि डी. डी.टी. और लिंडेन आजकल सरकार द्वारा निषेध है। गाँव में हमारे बुजुर्ग आमतौर पर कहते है कि आजकल तो खाना जहर हो गया है, उसका मुख्य कारण यह कीटनाशक जनित खाना है जो शरीर की कोशिकाओं में जम जाता है और कैंसर जैसे घातक बीमारियों की उत्पति में सहायक बनता हैं। आज के समय में पशुओं पर ज्यादातर डेल्टामैथ्रिन, सायपेर्मेथ्रिन तथा अमितराज का स्प्रे होता है जिसे पानी में 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर स्प्रे पम्प द्वारा पशुओं पे छिड़का जाता है। स्प्रे करते समय कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए जैसे कि –

1. हवा अगर पूर्व से पश्चिम चल रही है तो स्प्रे भी पूर्व से पश्चिम की दिशा में करना चाहिए।
2. स्प्रे करते समय बीड़ी सिगरेट आदि का सेवन न करे अन्यथा स्प्रे का रसायन होठों से शरीर के अंदर चले जाता है।
3. स्प्रे के समय अपनी नाक पर कपड़ा ढक ले अन्यथा कई लोग स्प्रे के समय बेहोश हो जाते है क्योंकि हमारे फेफड़ों में खून का काफी परवाह होता है जिससे की रसायन सीधा खून में चला जाता है।
4. चारे को स्प्रे से बचना चाहिए।
5. हालाँकि स्प्रे कड़वा होता है और सही मात्रा में डालने पर अधिक हानिकारक भी नहीं है परन्तु इसे पशु को चाटने से रोकना चाहिए और घोल सही मात्रा में ही बनाना चाहिए।
6. स्प्रे करने से पहले पशु को भरपेट पानी पिलाना चाहिए और स्प्रे करने के बाद छाया में खड़ा करना चाहिए।
7. पशुओं पर स्प्रे करने के बाद करीब 5 लीटर घोल पशुघर में भी छिड़कना चाहिए।
8. स्प्रे के खाली डिब्बों को तोड़कर फेकना है और रसोई या घर के किसी काम में प्रयोग नहीं लेना है। खाली डिब्बे में अगर पानी डालकर कीड़ियों पर डाले तो कीड़ियाँ मर जाएगी।
9. अगर एक पशु में खाज–खारिश है तो स्प्रे सभी पशुओं पर करना चाहिए।
10. खाज–खारिश के लिए स्प्रे 0, 10 व 20 दिन पर करना चाहिए। शोध में पाया गया है कि 10 दिनों बाद ही थोड़ा फर्क नजर आता है।
11. गाँव में गंधक एवं हुक्के का पानी काफी प्रचलित है हालाँकि यह केवल 20–30 प्रतिशत ही कारगर है।
12. जूओं के अंडे जिसे 'लिक्ख' भी कहते है, पशुओं के बालों से चिपके रहते है तथा इनके ऊपर कीटनाशक भी काम नहीं कर पाते। इसलिए विश्वविद्यालय ने तजुर्बे करके देखा है इसके रोकथाम के लिए स्प्रे 0 और 14 दिन पर करना चाहिए।

8. घावों में कीड़े पड़ना/साई बैठना :

पशुओं के घाव में कीड़े पड़ना गाँव में आमतौर पर देखा जाता हैं। इसका मुख्य कारण पशुशाला में एकत्रित गोबर हैं जहाँ पर मक्खियाँ प्रजनन करती हैं। जख्म में मक्खियों के लार्वों के कारण झाग बनते है तथा कोई दवाई इसमें काम नहीं कर पाती। इसका निवारण यह है कि पहले साई तोड़नी चाहिए फिर फिनाइल का फोआ लगाना चाहिए। कीड़े पड़ा घाव जल्दी भरता हैं।

संक्षेप में पशुओं को कीड़ों से बचाव के लिए समय–समय पर पशु के गोबर की जाँच कराए व कीड़े मारने की दवाई पिलाते रहे। यह छोटी आयु के पशुओं में बहुत आवश्यकता हैं। पशुओं का दाना, पानी व पशुशाला स्वच्छ रखे। पशुओं को प्रायः प्रातः या शाम को चारागाह में नहीं चराना चाहिए क्योंकि उस समय पत्तों पर ओस होती है तथा परजीवियों के लार्वे ज्यादा क्रियाशील होते हैं। पशुओं को दलदल वाले स्थान या जहाँ पानी भरा रहता है, वहाँ नहीं चराना चाहिए। पशुओं को पौष्टिक आहार के साथ–साथ खनिज मिश्रण अवश्य देना चाहिए। पशुगृह में पानी के निकास का प्रबंध करे, क्योंकि नमी पर कई परजीवियों की जीवनचक्र निर्भर करता हैं। पशु के शरीर पर लगे घाव का तत्परता से इलाज करे, नहीं तो मक्खियाँ बैठने पर कीड़े पड़ने का डर बना रहता हैं।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. टोल–फ्री हेल्पलाईन सेवा (1800–180–1184)
3. निःशुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

पशुओं में तपेदिक रोग (टी.बी.) लक्षण एवं रोकथाम

कमलदीप[1], रचना[2], ऋचा खीरबाट[3] एवं अनिका मलिक[4]

[1]पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, [2]डेयरी व्यवसाय प्रबंधन विभाग,
[3]पेरावेटरनिरी विज्ञान संस्थान, [4]पशु चिकित्सा एवं पशुपालन विस्तार शिक्षा विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

परिचय

1. तपेदिक रोग (क्षय रोग) पशुओं में एक दीर्घकालीन क्षयकारी संक्रामक रोग है जो गाय, भैंस, भेड़, बकरी एवं शूकर में पाया जाता है। इसके अलावा यह पक्षियों में भी पाया जाता है।
2. यह रोग पशुओं से मनुष्यों में भी फैलता हैं।
3. यह एक जीवाणु (*माइकोबेक्टिरियम बोवीस*) से फैलता है।
4. मनुष्यों में यह रोग प्रभावित पशुओं के दूध से भी फैल सकता है। यह मनुष्यों में पशुओं की साँस द्वारा भी फैल सकता है।
5. यह रोग एक संसर्गी रोग है जो एक पशु से दूसरे पशु के सम्पर्क में आने से भी फैलता है।

लक्षण

1. इस बीमारी से प्रभावित पशुओं में हल्का ज्वर (102.5° – 103° F) जो ठंड में बढ़ जाता है।
2. दीर्घगामी खाँसी, कठिन श्वांस, भूख की कमी, कृश शरीर, रूक्ष एवं शुष्क चमड़ी, कार्य क्षमता का ह्रास कन्धे व पुट्ठे की लसिका ग्रन्थियों के आकार में वृद्धि आदि।
3. कभी–कभी अयन की सूजन जो थनैला को जन्म देती है, वो इस रोग में भी देखी जा सकती है।

चिकित्सा

1. रोगी पशुओं को तत्काल बाड़े के अन्य पशुओं से अलग करना चाहिए।
2. प्रभावित पशु को पशु चिकित्सक के पास लेकर जाना चाहिए ताकि रोग निदान सुनिश्चित हो सके।
3. इस बीमारी की चिकित्सा दीर्घकालीन है।
4. स्ट्रेप्टोमाइसिन, रिफाम्पिसिन, आइसोनियाजिड का संयुक्त रूप से दीर्घकालीन प्रयोग (कम से कम 6 माह) लाभकारी होगा।

रोकथाम

1. पौष्टिक आहार (खनिज एवं विटामीन पूरित)
2. बाड़े में पर्याप्त स्थान
3. नियमित विसंक्रमण
4. रोग रोधन के लिए निम्नलिखित रसायनों का इस्तेमाल किया जा सकता है– (क) 2% तूतिया, (ख) 5% चूना, (ग) 5% फिनाईल या (घ) 2–4% फार्मेलिन द्वारा।
5. बाड़े में पशुओं का प्रबंधन अच्छे ढंग से करें।
6. पशुओं के बाड़े में साफ–सफाई का ध्यान रखें।

नवजात कटड़े-कटड़ियों को खीस पिलाने का महत्व

रचना[1], ऋचा खीरबाट[2], अनिका मलिक[3] एवं सौरभ छाबड़ा[4]

[1]डेयरी व्यवसाय प्रबंधन विभाग, [2]पेरावेटरनरी विज्ञान संस्थान, [3]पशु चिकित्सा एवं पशुपालन विस्तार शिक्षा विभाग, [3]पशु चिकित्सक, हरियाणा सरकार

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

कटड़े–कटड़ी के जन्म के बाद भैंस पहली बार जो दूध देती है वह खीस कहलाता है। अन्य रूमनधारियों के ही समान कटड़े–कटड़ियों का रूमन भी जन्म के समय अविकसित होता है। अतः इनकी पाचन क्रियाएँ भी साधारण पेट वाले पशुओं के समान ही होती हैं। भैंस का दूध इनका पहला प्राकृतिक आहार होता है। रूमन विकसित होने तक (3 महीने तक) बच्चा कुल 300 किलोग्राम तक दूध पी जाता है। यह मात्रा घटाकर 100 किलोग्राम पूर्ण दूध तथा 60–70 किलोग्राम स्प्रेटा दूध तक लाई जा सकती है। जन्म के समय बच्चे के पेट का आकार दो से तीन लीटर तक होता है। बच्चे का पहला आहार खीस होता है जो कि जन्म के 4 से 8 घंटे के अन्दर अवश्य ही पिलाना चाहिए।

खीस की रसायनिक संरचना साधारण दूध से भिन्न होती है। खीस में प्रोटीन, वसा, विटामिन्स तथा खनिज तत्वों की मात्रा अधिक होती है जो कि नवजात की जरूरत के अनुसार ही होती है। खीस में वसा की मात्रा 12 प्रतिशत, विटामिन 'ए' 3000 अंतर्राष्ट्रीय मात्रा और कैरोटीन 50 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम होती है जो कि साधारण दूध से बहुत अधिक है। खीस के वसा में असंतृप्त वसीय अम्लों की मात्रा बहुत अधिक होती है। खीस में मैगनीज, तांबा, लोहा तथा जस्ते की मात्रा भी साधारण दूध से अधिक होती है। भैंस की खीस में 12.5 प्रतिशत ग्लोबुलिन, 3.6 प्रतिशत एलब्यूमिन तथा 7.7 प्रतिशत कैसीन होती है। खीस में मौजूद अधिक ग्लोबुलिन की मात्रा कटड़े–कटड़ी को पहले 3 महीने तक रोगों से बचाने में सहायक होती है। ग्लोबुलिन का अवशोषण जन्म के बाद के कुछ घंटों में अत्यधिक होता है। अतः जन्म के 4 से 8 घंटे के अन्दर ही कम से कम एक किलोग्राम खीस पिलाना अत्यन्त आवश्क है। खीस पीने के उपरान्त, नवजात के खून में प्रोटीन, तथा इसके विभिन्न घटकों की मात्रा तालिका–1 में दर्शायी गई है।

अगर किसी कारणवश भैंस से खीस उपलब्ध ना हो तो किसी अन्य भैंस या गाय की खीस भी पिला सकते हैं। अगर किसी अन्य पशु की खीस भी उपलब्ध ना हो तो करीब 300 मि.ली. पानी में एक अंडा मिलाकर उसमें आधा चम्मच अरण्डी का तेल मिलाएँ। इस घोल में 600 मि.ली. गाय का दूध, थोड़ी सी विटामिन–ए मिलाएँ। इस घोल को दिन में तीन बार बराबर–बराबर मात्रा में 5 दिन तक पिलाएँ। इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि घोल हर बार ताजा ही बनाना चाहिए।

तालिका–1

खीस पीने के बाद कटड़े–कटड़ियों के खून में प्रोटीन घटकों की मात्रा में परिवर्तन

मात्रा (ग्राम/मि.लि.)	खीस पीने से पहले	खीस पीने के बाद		
		3 घंटे	12 घंटे	24 घंटे
कुल प्रोटीन	5.88	–	7.00	8.27
एलब्यूमिन	3.45	–	–	2.89′
अल्फा–1 ग्लोबुलिन	0.17	0.44	–	–
अल्फा–2 ग्लोबुलिन	0.29	1.08	–	–
गामा ग्लोबुलिन	0.64	1.30	2.78	3.16

पहले तीन दिन तक बच्चे को दिन में तीन बार आठ से दस मिनट तक खीस पिलानी चाहिए। यदि जन्म के बाद बच्चे को भैंस से अलग करना हो तो बोतल से कृत्रिम विधि द्वारा 800 से 1200 मि.ली. खीस दिन में तीन बार देनी चाहिए। बच्चों को खीस पिलाने वाली बोतल तथा बाल्टी को गर्म पानी से अच्छी तरह धोकर कीटाणुरहित रखना चाहिए। कृत्रिम विधि द्वारा कटड़े–कटड़ी का खीस पिलाने के निम्नलिखित लाभ हैं :–

- ❖ जन्म के बाद कटड़े–कटड़ी को भैंस से अलग किया जा सकता है ताकि भैंस को बच्चे को चाटने का मौका ना मिले तथा भैंस और बच्चे में लगाव पैदा न हो।
- ❖ भैंस से खीस पीने वाले बच्चों में कब्ज या दस्त की कृत्रिम विधि द्वारा कम हो जाती है।
- ❖ कटड़े–कटड़ी को हाथ से दूध पीना सिखाना ज्यादा आसान होता है।
- ❖ बच्चों के काटने से होने वाले रोगों जैसे थनैला की संभावना काफी कम हो जाती है।
- ❖ जिन भैंसों से बच्चों को जन्म के समय ही अलग कर दिया जाता है वो दूध देने में परेशानी नहीं रहती।
- ❖ हाथ से खीस पिलाने का हिसाब–किताब रखा जा सकता है तथा जरूरत के मुताबिक यह कम या ज्यादा किया जा सकता है।

विस्तार शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों (ट्रेनिंग आदि) के लिए पशु विज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	पशु विज्ञान केन्द्र	वैज्ञानिक का नाम
1.	पशु विज्ञान केन्द्र, फ्रैन्डस कॉलोनी, नजदीक करनाल बाई पास चौक, कैथल	डॉ. रमेश कुमार
2.	पशु विज्ञान केन्द्र, वैटेनरी पोली क्लीनिक, सोनीपत	डॉ. इन्द्रजीत सिंह
3.	पशु विज्ञान केन्द्र, पांडु पिंडारा, जींद	डॉ. रमेश कुमार
4.	पशु विज्ञान केन्द्र, सिरसा	डॉ. बी.एस. श्योकन्द
5.	पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी	डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया
6.	पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक	डॉ. राजेन्द्र सिंह
7.	पशु विज्ञान केन्द्र, युगल विहार (दाहलीवास) रेवाड़ी	डॉ. अभय सिंह यादव
8.	पशु विज्ञान केन्द्र, नजदीक मिनी सैक्ट्रेट, गुड़गांव	डॉ. कृष्ण कुमार यादव
9.	विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार	डॉ. सज्जन सिंह एवं डॉ. देवेन्द्र सिंह
10.	पशु विज्ञान केन्द्र, अम्बाला	–

ए1 और ए2 दूध की एक दुधिया कथा

रूबी सिवाच[1], अनिका मलिक[2] एवं सोनम नागर[2]

[1]डेयरी रसायन विज्ञान विभाग, [2]पशु चिकित्सा एवं पशुपालन विस्तार शिक्षा विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

"दूध.... दूध.... दूध.... अद्भुत दूध" 1999 के इस तुकबंदी जिंगल को कौन भूल सकता है कि राष्ट्रीय टेलीविजन पर दूध को एक अमृत के रूप में परिभाषित किया गया। लेकिन जो दूध भारतीय उपभोक्ताओं द्वारा पीया जा रहा हैं क्या वो स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद है? 2010 में भारत के खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण के सर्वेक्षण के अनुसार, 68.4 प्रतिशत दूध मिलावटी हैं। हाल ही में ए1 और ए2 दूध चर्चा का विषय बना हुआ है। क्या है ए1 और ए2 दूध और हम कौन–सा दूध पी रहे है?

क्या है ए1 और ए2 दूध?

दूध के दोनों ए1 और ए2 किस्म दो आनुवंशक रूप से अलग–अलग नस्लों की गाय के उत्पाद हैं। दूध में मुख्यतः दो प्रोटीन उपलब्ध है, हमट्ठा और कैसिइन। गाय के दूध में लगभग 3.5 प्रतिशत प्रोटीन कैसिइन शामिल हैं। गाय के दूध के कुल प्रोटीन का लगभग 30 प्रतिशत भाग बीटा–कैसिइन है। ए1 और ए2 दूध के बीच बीटा–कैसिइन की एमिनों एसिड संरचना में अंतर पाया गया है। ए2 दूध में पाया जाने वाला बीटा–कैसिइन, बीटा–कैसिइन की वो प्रकार है जिसका उत्पादन हमारी गायें पिछले 10000 सालों से करती आ रही हैं अर्थात् तब से जब वो पहली बार पालतू बनायी गयी, परन्तु पिछले कुछ हजार सालों में किसी समय में, एक प्राकृतिक उत्परिवर्तन के कारण कुछ यूरोपियन डेयरी झुंडों के दूध में पाए जाने वाले बीटा–कैसिइन की एमिनों एसिड संरचना में कुछ बदलाव हुआ।

ए1 बीटा कैसिइन गायों की उत्तरी यूरोप में शुरू की नस्लों से दूध आमतौर पर ए1 बीटा–कैसिइन में उच्च है। ए1 दूध होल्स्टीन, आयरशायर और ब्रिटिश तरह की नस्लों से आता है। इसके विपरित भारत में ए2 गाय है जो मुख्य रूप से मूल निवासी देसी नस्लें है।

जब हम एक ए1 गाय का दूध पीते हैं, शरीर में यह एक ऐसे अणु में टूटता है एक अणु है जो स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं है। यह एक बायोएक्टिव पेप्टाइड और अफीम से सम्बंधित यौगिक बीटा कहा जाता है जो है बीटा। हालांकि जब हम ए2 दूध भी कुछ हद तक अणु का उत्पादन करता है जो कि यह ए1 दूध की तुलना में ना के बराबर है। बीटा मधुमेह, ह्रदय रोग, शिशु मृत्यु, आत्मकेंद्रित और पाचन समस्याओं का कारण माना जा रहा है।

भारत या भारतीय परिवेश में समस्या :

भारत में 37 शुद्ध पशु नस्लें है। इनमें साहीवाल, गिर, लाल सिंधी, थारपारकर, राठी, कंक्रेज, ओंगोल और हरियाणा ये कुछ मुख्य नाम है। सभी देसी गायों का दूध पहले ए2 किस्म का था। लेकिन भारत सरकार ने 1970 में व्हाइट फ्लड कार्यक्रम शुरू कर दिया। जिसमें दूध का उत्पादन पढ़ाने के लिए बड़े पैमाने पर भारतीय मूल की सर्वश्रेष्ठ देसी गायों का यूरोपीय देशों की किस्मों के साथ प्रजनन किया गया जिससे हमारी सर्वश्रेष्ठ देसी गायों की कुछ जगह संकरी नस्लों ने ले ली जो अब ए1 किस्म के दूध का उत्पादन करती हैं। हालांकि व्हाइट फ्लड के कार्यक्रम के पीछे इरादा दुग्ध उत्पादन में वृद्धि का था लेकिन आज हम एक गम्भीर स्थिति का सामना कर रहे हैं जहाँ देसी गायें विलुप्त होने के कगार पर आ गयी हैं जो हमें सदियों से सुरक्षित ए2 दूध उपलब्ध करवा रही थी। आज भारत दुनिया का सबसे बड़ा दूध उत्पादक होने के बावजूद डेयरी कौशल को खोने के खतरे का सामना कर रहा है।

समस्या का समाधान :

भारत सरकार को एक नया कार्यक्रम चलाना होगा जिसमें यह सुनिश्चित किया जाये कि भारतीय पशुपालक अपनी देसी गायों की बोवाई ए2–ए2 जीन के बैल के वीर्य से ही करवाएँ।

गौ मूत्र–पौराणिक व आधुनिक उपयोग

करण सिंह[1], अमित सांगवान[2], संदीप कुमार[2] एवं नीरज अरोड़ा[2]
[1]पशु चिकित्सा अधिकारी, नेशनल ब्रेन रिसर्च सेन्टर, गुरुग्राम,
[2]पशु शल्य चिकित्सा एवं विकिरण विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

भारतीय संस्कृति में गाय को माता का दर्जा दिया गया है। गाय से प्राप्त उत्पाद अनेकों रोगों के निवारण में इस्तेमाल किए जाते हैं। गौमूत्र जो कि "पंचगव्य" का भी एक महत्वपूर्ण घटक है, प्राचीन समय से ही अनेक रोगों के ईलाज में उपयोग होता है। इसका वर्णन चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, वृहद भागबट, अथर्ववेद, भावप्रकाश आदि में भी किया गया है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान हुए अध्ययन के अनुसार गौमूत्र रक्तचाप, धमनियों में रूकावट, कब्ज, बवासीर, माईग्रेन, स्त्री–प्रसूति रोगों, कान व नाक की बीमारियों से लड़ने में सक्षम है। प्राचीनकाल में गौमूत्र को आधुनिक युग के एंटीबॉयोटिक की भांति भी इस्तेमाल किया जाता रहा है। गौमूत्र में न केवल विभिन्न रोगों से लड़ने की क्षमता है अपितु कृषि विज्ञान एवं मधुमक्खी पालन में भी यह कई तरह से उपयोगी साबित हुआ है। गौमूत्र के विभिन्न उपयोगों पर प्रकाश डालने से पूर्व इसके रसायनिक घटकों की जानकारी आवश्यक है जो निम्नलिखित है:–

सोडियम, नाइट्रोज, सल्फर, मैंगनीज, लोहा, सिलिकान, कैल्शियम साल्ट्स, सीट्रिक एसिड, एन्जाईमस, क्लोरिन, फास्फेट, कारबौलिक एसिड, हारमॉनस, मैग्नीशियम, लैक्टोज, सक्सिनीक एसिड, क्रिएटिनीन, विटामिन 'ए', 'बी', 'सी', 'डी' तथा 'ई'।

उपरोक्त घटक/घटकों की कमी या अधिकता ही विभिन्न रोगों का कारण बनती है। गौमूत्र में ये सभी एक संतुलित मात्रा में होते हैं। अतः इसके उपयोग से शरीर रोग मुक्त होता है।

1. गौ–मूत्र के पौराणिक उपयोग

आयुर्वेद में गौमूत्र के निम्नलिखित उपयोग वर्णित हैं :–

क्र.	रोग	गौ–मूत्र व अन्य अव्यव
1.	बुखार	गौमूत्र + काली मिर्च + दही +घी
2.	कुष्ठ रोग	गौमूत्र + दारूहल्दी
3.	विकृत कुष्ठ रोग	गौमूत्र + नींबू चाय
4.	जीर्ण कुष्ठ रोग	गौमूत्र + वसाका (पत्ते) + कुराला (छाल) + कनेर (पत्ते) + नीम (छाल)
5.	मिर्गी	गौमूत्र + सरसों का तेल + नीम (छाला) + सौमापापड की छाल
6.	पांडु रोग/अनीमिया	गौमूत्र + त्रिपाला + गौदुग्ध

2. गौ–मूत्र औषधिय गुण

- यूरिया, क्रिएटिनिन, कारबोलिक एसिड, फिनोलस, कैल्शियम तथा मैंग्नीज युक्त होने के कारण गौमूत्र मे कीटाणुनाशक गुण है।
- एंटीआक्सीडेंट गुण तथा एलैन्टाईन के कारण गौमूत्र का कैंसर के ईलाज में भी उपयोग किया जाता है।
- एलैन्टाईन के कारण ही गौमूत्र घाव भरने की गति को त्वरित करता है।
- गौमूत्र के नियमित उपयोग से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता में ईजाफा होता है।
- हृदय व रक्त तंत्र में गौमूत्र निम्न रूप से लाभकारी होता है।
  - (क) कैलीकेरिन– धमनियों को फैलाता है।
  - (ख) युरोकाईनेज– फिब्रीनोलाईटिक गुण के कारण रक्त के थक्के बनने से रोकता है।
  - (ग) अमोनिया– रक्त कोशिकाओं की संरचना बनाए रखता है।
  - (घ) नाईट्रोजन, सल्फर, सोडियम व कैल्शियम रक्त शुद्धिकरण में मदद करते हैं।

- तांबा व कैल्शियम मोटापा कम करते है तथा हड्डियों को मजबूत रखते हैं।
- तांबा– विषधर औषध के गुण होते हैं।
- गौमूत्र शारीरिक समस्थिति को बनाए रखता है तथा निम्नलिखित प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है।
- वसा कम करता है।
- मानसिक तनाव दूर करता है।
- याददाश्त को बढ़ाता है।
- जिगर की प्रक्रियाओं को तेज करता है।
- शरीर के विषैले पदार्थों को साफ करता है।
- हृदय व मस्तिष्क को मजबूत बनाता है।

3. कृषि कार्यों में उपयोग :

"पंचगव्य" गाय से प्राप्त पाँच उत्पादों को मिलाकर बनाया जाता है जो कि दूध, घी, दही, गौमूत्र व गोबर है। इसे कृषि भूमि में उर्वरक एवं कीटनाशक के रूप में उपयोग किया जाता है। हाल ही के शोध से पता चला है कि गौमूत्र अकेले भी कीटनाशक के रूप में प्रयोग हो सकता है।

- गौमूत्र आसुत (Distilate) जैव सक्रिय अणुओं की गतिविधियों को तेज करता है जैसे –
  (i) कैंसर रोधी दवाइयाँ, पुष्टिकर, एंटीबॉयोटिक आदि।
  (ii) गौमूत्र मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ाता है जिससे राई घास के उत्पादन में वृद्धि होती है।

4. मधुमक्खी पालन में उपयोग :

यूरोपीयन फाउलब्रुड, मधुमक्खी पालन पर नकारात्मक असर डालने वाली एक आम बीमारी है। गौमूत्र इस स्थिति में त्वरित व समग्र समाधान प्रदान करता है। मधुमक्खी के विकास को बढ़ावा देता है, एवं उनकी कार्य करने की क्षमता को बढ़ाता है। अतः गौमूत्र ऐसी गंभीर परिस्थितियों में एक पर्यावरण हितैषी समाधान है।

सारांश :

गौमूत्र पद्धति आने वाले समय में एक महत्वपूर्ण शोध का विषय हो सकता है। आर्युवेद में गौमूत्र को जीवन के लिए अमृत माना गया है। इस लेख के माध्यम से गौमूत्र के कुछ महत्वपूर्ण औषधिय गुणों पर प्रकाश डाला गया है। हालांकि इस विषय पर तथा गौमाता से प्राप्त अन्य उत्पादों पर शोध की अपार सम्भावनाएँ अपेक्षित हैं। अतः गौमूत्र पद्धति आने वाले समय में अनेकों अन्य भयानक बीमारियों का ईलाज बन सकती है क्योंकि यह पर्यावरण हितैषी, आर्थिक रूप से व्यवहार्थ तथा आसानी से बहुतायत पर उपलब्ध है।

मूत्र की जैव रासायनिक जाँच

शालिनी शर्मा एवं निर्मल सांगवान
पशु देहिकी एवं जीव रसायन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

मूत्र में सामान्यतः यूरिया, क्रिएटिनिन, जल एवं लवण पाए जाते हैं। मूत्र का सामान्य रंग हल्का पीला होता है। विभिन्न प्रकार के रोग अथवा दवाइयों के सेवन से मूत्र का रंग हरा, नारंगी, नीला, गुलाबी, लाल, काला या भूरा प्रतीत होता है। पशु प्रतिदिन मूत्र की एक निश्चित मात्रा का उत्सर्जन करते हैं। परन्तु गुर्दों के रोग में, मधुमेह होने पर अधिक मूत्र का उत्सर्जन होता है। इसी तरह उल्टी, दस्त, बुखार होने पर, कम पानी पीने के कारण अथवा गुर्दों की अक्रियशीलता होने पर पशु निश्चित मात्रा से कम मूत्र उत्सर्जित करते हैं। आमतौर पर ताजा मूत्र साफ व स्पष्ट होता है, किन्तु लाल रक्त कणिकाएँ, श्वेत रक्त कणिकाएँ, लवणों व मवाद इत्यादि के कारण मूत्र दूधिया दिखाई देता है।

असामान्य परिस्थितियों में मूत्र में जैव रासायनिक पदार्थों का निष्कासन होने लगता है। असामान्य परिस्थितियाँ जैसे चयापचयन सम्बंधित रोग, यकृत अथवा गुर्दे के रोग इत्यादि से उत्पन्न हो सकती है। ऐसी स्थिति में मूत्र में शर्करा, प्रोटीन, पित्त वर्णक, पित्त लवण, कीटोन काय इत्यादि पाए जाते हैं। लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के पशु चिकित्सा फिजियोलॉजी एवं बायोकेमिस्ट्री विभाग में पशुओं के जैविक तरल पदार्थों (रक्त, मूत्र, मल, लार) में जैव रसायनों का मापन करने हेतू विभिन्न सुविधाएँ (स्वचालित विश्लेषक, अर्ध स्वचालित विश्लेषक एवं एटॉमिक अब्सॉर्ब्शन स्पेक्ट्रोमीटर) उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त यहाँ पारंपरिक विधि द्वारा भी मूत्र में जैव रसायनों का आंकलन प्रयोगशाला में किया जाता है।

मूत्र में शर्करा:

मधुमेह शरीर की एक असामान्य परिस्थिति है जिसमें रक्त ग्लूकोज स्तर बढ़ा हुआ मिलता है। भोजन पेट में जाकर एक प्रकार के ईंधन में बदलता है जिसे ग्लूकोज कहते हैं। यह एक प्रकार की शर्करा होती है। ग्लूकोज पशुओं की रक्त धारा में मिलता है और शरीर की लाखों कोशिकाओं में पहुँचता है। अग्न्याशय इन्सुलिन उत्पन्न करता है एवं इन्सुलिन भी रक्तधारा में मिलता है और कोशिकाओं तक जाता है। इन्सुलिन रक्त में ग्लूकोज की एक तय मात्रा बनाये रखने में सहायक हार्मोन है। पशुओं में इन्सुलिन की कमी होने पर शरीर में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ने लगती है। पशुओं के गुर्दे इस बढ़ी हुई ग्लूकोज की मात्रा को सहन नहीं कर पाते और ग्लूकोज शर्करा मूत्र में आने लगती है। मूत्र की जैव रासायनिक जाँच द्वारा शर्करा की पुष्टि की जा सकती है। इस प्रकार जैव रासायनिक जाँच के द्वारा पशुओं को उपयुक्त इलाज उपलब्ध करवाया जा सकता है। मूत्र के नमूने में बेनेडिक्ट रिएजेंट डालने से हरा, नारंगी, लाल रंग आने पर शर्करा की पुष्टि की जाती है।

मूत्र में कीटोन काय:

शरीर में मुख्यतः ऊर्जा का स्त्रोत ग्लूकोज होता है परन्तु पर्याप्त कार्बोहाइड्रेट न मिलने पर कीटोसिस होने की सम्भावना रहती है। पशुओं को अधिक समय तक खाद्य पदार्थों से वंचित रखने पर भी कीटोसिस होने की सम्भावना रहती है। कम खाद्य के सेवन से रक्त में शर्करा की कमी हो जाती है तब वसा अम्लों का अधिकाधिक चयापचयन होने लगता है अैर इससे कीटोन काय का निर्माण होता है। उच्च दुग्ध उत्पादक पशुओं में कीटोसिस होने की अधिक सम्भावना रहती है। कीटोसिस होने पर मूत्र व दुग्ध में कीटोन काय आने लगते हैं तथा मूत्र से एसीटोन की गंध आने लगती है। ऐसा होने पर मूत्र की जाँच करवानी चाहिए। मूत्र की जाँच जैव रासायनिक प्रयोगशालाओं में दोनों, पारंपरिक विधि एवं पत्ता विधि द्वारा की जाती है। पारंपरिक विधि में मूत्र के नमूने में सोडियम नाइट्रोप्रूसाइड नामक रसायन मिलाने पर बैंगनी रंग आने पर कीटोन काय

की पुष्टि की जाती है।

मूत्र में प्रोटीन :

असामान्य परिस्थितियों जैसे गुर्दे में विकार से मूत्र में प्रोटीन आने लगते हैं। मूत्र में प्रोटीन की उपस्थिति स्वचालित विश्लेषक, अर्ध स्वचालित विश्लेषक द्वारा आंकी जा सकती है। इसके अतिरिक्त प्रयोगशाला में प्रोटीन के मापन के लिए मूत्र नमूने को गरम किया जाता है, जिससे उसमें श्वेत अर्ध ठोस पदार्थ बनता है जो अम्ल मिलाने पर भी नहीं घुलता। मूत्र में प्रोटीन की उपस्थिति की पुष्टि नाइट्रिक अम्ल मिलाकर भी की जा सकती है। नाइट्रिक अम्ल धीरे–धीरे मूत्र के नमूने में मिलाने से अम्ल और मूत्र के संगम स्थान पर श्वेत अंगूठी बनती हुई दिखाई देती है जो मूत्र में प्रोटीन की उपस्थिति दर्शाती है।

मूत्र में पित्त लवण :

पित्त लवणों का निर्माण यकृत में होता है। यह लवण मुख्यतया वसा के पाचन में सहायक होते हैं। यकृत की क्षति होने पर पित्त लवण मूत्र में उत्सर्जित होते हैं। पशुओं में पीलिया होने पर, पित्त लवण एवं पित्त वर्णन मूत्र में आने शुरू हो जाते हैं। पित्त लवण सतह के तनाव को कम करते हैं। अतः मूत्र में इनकी उपस्थिति की जाँच मूत्र की सतह पर सल्फर पाउडर छिड़क कर की जाती है। यदि यह पाउडर मूत्र की सतह से नीचे जाकर डूब जाता है, तब यह पित्त लवणों की उपस्थिति दर्शाता है। यदि यह पाउडर सतह पर ही रह जाता है तो ऐसे मूत्र में पित्त लवण नहीं पाए जाते।

मूत्र में पित्त वर्णकः

बिलीरूबिन व बिलीवर्डिन नामक मुख्यतया दो पित्त वर्णक होते हैं। पिलिये में कुल बिलीरूबिन बढ़ जाता है। लाल रक्त कणिकाओं के टूटने से बिलीवर्डिन व बिलीरूबिन का निर्माण होता है। यह बिलीरूबिन यकृत से छोटी आँत में आ जाता है और फिर गुर्दे में आ जाता है। गुर्दे में यह यूरोबिलिनोजन और फिर यूरोबिलिन में परिवर्तित हो मूत्र में निष्कासित हो जाता है। अतः बिलीरूबिन व बिलीवर्डिन सामान्यतः यूरोबिलिन के रूप में मूत्र से निष्कासित होते हैं। परन्तु यकृत की खराबी होने पर अथवा पित्त प्रणाली में रूकावट आने पर बिलीरूबिन मूत्र में आना प्रारम्भ हो जाता है। इससे मूत्र का रंग गहरा नारंगी रंग का प्रतीत होने लगता है। मूत्र का ऐसा रंग आने पर उसमें बिलीरूबिन की जाँच करवानी चाहिए। पारंपरिक विधि में मूत्र में नाइट्रिक अम्ल मिलाने पर यदि मूत्र में विभिन्न रंग दिखाई देते हैं जैसे परखनली के बाहर की तरफ हरा रंग फिर लाल और अंदर की तरफ नीला पीला रंग दिखाई देता है तो उसमें बिलीरूबिन उपस्थित हो सकता है।

दूध की प्रोसैसिंग कर अधिक आय कमाएँ

धर्मबीर दहिया, रमेश कुमार एवं देवेन्द्र सिंह
विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपत राय, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

वर्तमान युग में कृषि एक महँगा व्यवसाय बनता जा रहा है। बढ़ती महँगाई और घटती जोत तथा घटती आय को देखें तो किसान का गुजारा केवल खेती से काफी मुश्किल नजर आता है। किसानों को इस समय कृषि विविधिकरण की तरफ ध्यान आकर्षित करना होगा तथा सहायक धन्धों को अपनाना बड़ा जरूरी हो गया है। सहायक धन्धों में पशुपालन किसान का पुश्तैनी धन्धा रहा है तथा इसका अनुभव भी किसानों को काफी सदियों से रहा है। जरूरत है केवल डेयरी फार्मिंग (पशुपालन) को सुव्यवस्थित तरीके से शुरू करने की ताकि प्रति पशु दूध का उत्पादन बढ़ाया जा सके तथा दूध की प्रोसैसिंग करके अधिक लाभ कमाया जा सके। हमारे देश का दूध उत्पादन 8.5 करोड़ टन है जो विश्व में प्रथम स्थान पर है। लेकिन दूध देने वाले पशुओं की संख्या को देखें तो कुल दूध का उत्पादन काफी कम है (20 करोड़ गाय और 8 करोड़ भैंस) जो कि मौजूदा उत्पादन से कई गुणा बढ़ाया जा सकता है।

उपरोक्त तथ्य के साथ–साथ यह भी ध्यान रखना आवश्यक बनता है कि हमारे दूध की गुणवता बढ़िया हो। हमारे देश में दूध की गुणवता विश्व के दूसरे देशों के मुकाबले काफी नीचे है।

भविष्य में विश्व व्यापार संगठन के अधीन विश्व मंडी खुलने से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मुकाबला काफी बढ़ता जा रहा है। इसलिए समय रहते हमारे दूध उत्पादक नहीं चेते, ध्यान नहीं दिया तो दूध तथा दूध की गुणवता, क्वालिटी सुधारने के लिए आवश्यक कदम नहीं उठाये तो आने वाले समय में उनके लिए अंतर्राष्ट्रीय मानकों पर खरा उतारना बड़ा मुश्किल होगा और भारतीय दुग्ध उत्पादकों को आर्थिक घाटा होने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए भारतीय दुग्ध उत्पादकों को विशेष ध्यान रखना होगा कि दूध उत्पादन स्वच्छ हो तथा क्वालिटी अच्छी हो, इसके लिए प्रोसैसिंग के उचित तरीके अपनाने चाहिए।

1. स्वच्छ दूध का उत्पादन :

अस्वच्छ दूध शीघ्र ही खराब हो जाता है क्योंकि इसमें कई हानिकारक सूक्ष्म जीवाणुओं का तेजी से आक्रमण होने की संभावना रहती है। इस आक्रमण की वजह से दूध खट्टा हो जाता है तथा स्वाद बिगड़ जाता है। इसलिए बाजार में दूध या इसके उत्पाद आसानी से नहीं बिक पाते हैं। अगर स्वच्छता नहीं रखी गई है तथा तापमान ज्यादा है तो तुरन्त दूध पर हानिकारक जीवाणु आक्रमण करके इसे खराब करते हैं। स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान दें :–

1. पशुओं की साफ सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए तथा डेयरी का वातावरण स्वच्छ होना चाहिए।
2. दूध दुहने वाला व्यक्ति रोग रहित होना चाहिए तथा साफ हाथों व कपड़े से सिर को ढ़ककर दूध निकालें। पशुओं के रहने का स्थान जीवाणु रहित करना चाहिए।
3. साफ बर्तनों का प्रयोग करना तथा बर्तनों को जीवाणु रहित करना चाहिए। दूध की पहली धार को नष्ट कर देना चाहिए साथ ही साथ दूध को छाया में ढ़क कर तथा साफ कपड़े से छान कर रखना चाहिए।

2. दूध को ठंडा करना :

दूध को हमेशा साफ बर्तनों में एकत्रित करना चाहिए तथा ठंडा करने के लिए सही तरीका अपनाना चाहिए। यदि आप को 500 लीटर दूध रोजाना ठंडा करना है तो इसके लिए कैन–कूलर, सतही कूलर, कैन सपैरेटर कूलर व रोटो फ्रिज आदि का इस्तेमाल करना सस्ता पड़ता है। अगर आप को 500 से 2000 लीटर दूध को रोजाना ठंडा करना पड़े तो बड़े मिल्क कूलर इस्तेमाल किये जा सकते हैं। 1000 से

ज्यादा मात्रा के लिए तुरन्त ठंडा करने वाली युनिट का प्रयोग भी किया जा सकता है।

3. दूध की वसा उतारना :

दूध से अधिक मुनाफा कमाने के लिए दूध की मलाई उतारना आवश्यक है। इस प्रकार मलाई से क्रीम, मक्खन व घी इत्यादि बनाया जा सकता है तथा दूध की वसा भी वर्तमान युग में कार्य के अनुसार सेहत के हिसाब से उपयुक्त रह जाती है। वसा (मलाई) उतारने के लिए किसान घर पर ही हाथ से चलने वाली सैन्ट्रीफ्यूगल मशीन का प्रयोग करके 50–500 लीटर दूध प्रति घंटा के हिसाब से प्रोसैसिंग की जा सकती है तथा वसा (मलाई/क्रीम) उतारी जा सकती है। इस प्रकार डेयरी मालिक अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते है।

4. दूध का होमोजीनाईजेशन करना :

यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दूध में बड़े चर्बी (वसा) के कणों को छोटा किया जाता है तथा दूध को फेट कर दूध को एकसार किया जाता है ताकि दूध में एक समानता व तरलता आ जाये और दूध पर अलग से क्रीम की सतह नहीं जमने पाये तथा दूध का स्वाद एक जैसा बना रहे।

5. दूध को जीवाणु रहित करना :

इस प्रक्रिया को दूध का पाश्चुरिकरण कहते हैं। इसमें दूध को 100 डिग्री सैलसीयस तक गर्म करते हैं ताकि दूध में मौजूद जीवाणु नष्ट हो जाये तथा आगे जीवाणु की वृद्धि कुछ समय के लिए रूक जाये। इस बात का ध्यान रखें, दूध को ज्यादा देर तक उबालने से दूध के विटामिनों की कुछ मात्रा नष्ट हो जाती है।

6. दूध की पैकिंग :

पाश्चुरिकरण के तुरन्त बाद दूध की पैकिंग करनी चाहिए। दूध को काँच की बोतलों, प्लास्टिक के डिब्बों, पीपो तथा प्लास्टिक की थैलियों में भर कर पैकिंग की जा सकती है। पैकेट पहले से बने होते हैं, केवल इनमें दूध भरकर सील करना होता है। इस प्रकार पैकेटों के अलावा मौके पर पैकेट बनाने, भरने व सील करने वाली तकनीक भी मौजूद है, जिसमें दूध को भरने से पहले पैकेटों को जीवाणु रहित करने के तरीके मौजूद हैं। इसके लिए बैच पाश्चुरिकरण वाली 2000 लीटर रोजाना तक की क्षमता वाली इकाईयों में पैकेट सील करने के लिए हस्त चलीत मशीनें प्रयोग की जा सकती है। इसमें 300 पैकेट प्रति घंटा की दर से पैकिंग की जा सकती है तथा पैकिंग भी काफी सस्ती पड़ती है तथा किसान को काफी मुनाफा होता है। ध्यान रहे पैकिंग बाजार में ग्राहकों की माँग के अनुसार वजन के हिसाब से तैयार करने चाहिए।

7. दूध की संभाल :

दूध की गुणवता बनाए रखने के लिए दूध को अधिक गर्मी, सूर्य की रोशनी (धूप) और अधिक हिलने–डुलने से बचाना चाहिए। दूध को हमेशा साफ व ठंडी जगह पर साफ बर्तनों में रखें। दूध की पैकिंग इस प्रकार करें कि दूध ज्यादा हिले–डुले नहीं क्योंकि दूध के अधिक हिलने–डुलने से इसके अन्दर की आक्सीजन की वजह से इसमें खटास पैदा हो जाता है तथा बिक्री व गुणवता को प्रभावित करता है।

डेयरी मालिक इन उपरोक्त बातों पर ध्यान दें तो निश्चित रूप से दूध स्वच्छ एवं अच्छी गुणवता वाला होगा जिससे किसान की अधिक आय होगी और किसान की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी व देश तथा राज्य का विकास होगा।

भारत वर्ष में नाबार्ड बैंक द्वारा संचालित कैपिटल वैंचर फंड–स्कीम के तहत किसान किसी भी व्यवसायिक बैंक से कितना ही ऋण प्रोजक्ट के अनुसार लेकर 50 प्रतिशत राशि तक बिना ब्याज के ऋण ले सकता है। इस प्रकार किसान अपने फार्म पर दूध की प्रोसैसिंग शुरू करके अधिक से अधिक लाभ कमा सकता है। इस स्कीम से भैंसों की कीमत को छोड़कर बाकी दूध प्रोसैसिंग की व्यवस्था के लिए सभी प्रकार का खर्च शामिल होता है।

दूध हर उम्र के व्यक्तियों के लिए लाभदायक पोषण है। इसमें सभी आवश्यक तत्व सही मात्रा, उचित अनुपात, उच्च पोषण, शक्ति प्रदान करने वाले तथा सरलता से पचने वाले होते हैं। जिस कारण इसको सम्पूर्ण प्राकृतिक आहार कहा जाता है। दूध से अधिक आय अर्जित करने के लिए दूध उत्पादकों तथा दूध बेचने वालों को दूध के उत्पाद बनाकर बेचना चाहिए, क्योंकि दूध बेचने की अवस्था में दूध खराब

होने से बचाया जा सकता है तथा उसको कम जगह में दूध की अपेक्षा लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है और थोड़े परिश्रम व लागत में अपना लाभ कई गुणा बढ़ा सकते हैं। दूध के उत्पाद बनाने को एक व्यवसाय के रूप में शुरू करने के लिए राष्ट्रीयकृत बैंक या सहकारी बैंकों से, नाबार्ड बैंक की कैपिटल वैंचर फंड स्कीम के तहत ऋण लेकर अधिक से अधिक लाभ कमाकर पशुपालक आत्म निर्भर बन सकते हैं।

दूध के पदार्थ व दूध के उत्पाद बनाने की विधि– दूध से तीन प्रकार के उत्पाद बनाये जा सकते हैं।

1. दूध को गर्म करके गाढ़ा करके निम्न मुख्य पदार्थ बनाए जा सकते हैं। जैसे– खीर, खोआ, रबड़ी, कुल्फी, आईसक्रीम इत्यादि।
2. दूध को जमाकर या फाड़कर बनने वाले पदार्थों में दही, पनीर, छैना प्रमुख है।
3. वसा/क्रीम द्वारा तैयार पदार्थ जिनमें मक्खन, घी, लस्सी, सप्रेटा आदि।

दूध से बनने वाले कुछ मुख्य उत्पादों के निम्न प्रकार हैं :–

1. **आईसक्रीम** : एक ऐसा उत्पाद जिसमें कम से कम 10% वसा, 3.5% प्रोटीन तथा 36% कुल ठोस पदार्थ होता है तथा कुल मिलाकर 0.5% से अधिक कानूनी रूप से स्वीकृत स्टेबलाईजर और एम्पलीफायर का प्रयोग ना हो। हमारे देश में कुल दूध उत्पादन का 0.8% भाग आईसक्रीम बनाने के लिए प्रयोग होता है। इस उत्पाद की लोकप्रियता ग्रीष्म ऋतु में ही सीमित न रहकर पूरे वर्ष इसको समारोह में व्यंजन के रूप में प्रयोग किया जाता है। दूध को गाढ़ा करके चीनी, मेवा इत्यादि डालकर जमाने से आईसक्रीम बनती है। इसकी गुणवता को कई कारण प्रभावित करते हैं। जैसे– खुशबू का प्रयोग, फल व मेवा का प्रयोग, ठंडा करने का समय व तरीका।

2. **खोआ** : हमारे देश में खोआ अत्यधिक प्रचलित एक ऐसा दूध उत्पाद है जिसमें कम से कम 20% दूध वसा, 70–75% ठोस पदार्थ तथा 28% के आसपास आर्द्रता होती है। खोआ भैंस के दूध से 21 से 23% तक प्राप्त किया जा सकता है। खोआ दूध को गर्म करके गाढ़ा करने से बनता है। खोआ का प्रयोग ज्यादातर विभिन्न प्रकार की मिठाईयाँ बनाने के काम आता है। जैसे– पेड़ा, कलाकंद, बर्फी, मिल्क केक, गुलाब जामुन इत्यादि परन्तु इसको व्यवसाय के रूप में शुरू करन में कुछ समस्याएँ हैं। जैसे– समुचित तकनीक का अभाव व शीघ्र खराब होने की प्रवृति प्रमुख है। परन्तु अब राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड ने एक ऐसे संयंत्र का विकास किया है जिसमें लगभग 40 किलोग्राम खोआ प्रति घंटा बनाया जा सकता है तथा एक ऐसा खोआ पाउडर भी तैयार किया जा सकता है जो 6–9 महीने तक सामान्य तापमान पर सुरक्षित रखा जा सकता है। अन्यथा खोआ शीत तापमान में केवल एक सप्ताह तक ही सुरक्षित रह सकता है।

3. **दही** : एक ऐसा उत्पाद जो 8–10 घंटे में 22^0 C पर तैयार हो जाता है। इसको बनाने के लिए दूध को धीमी आँच पर गर्म करके ठंडा करने पर जब तापमान कमरे के तापमान के बराबर रह जाये। उस समय जामन (खट्टा) लगाकर रात को उपरोक्त तापमान व समय पर रखने पर प्राप्त होता है।

4. **पनीर** : दूध का प्रमुख उत्पाद पनीर है। भैंस का दूध जिसमें 4.7% वसा तथा 14.5% कुल ठोस पदार्थ हो तो हमें 13.1% दूध वसा, 28.9% कुल ठोस पदार्थ व 71.1% आर्द्रता वाला पनीर प्राप्त होता है। जिसमें दूध वसा व प्रोटीन मुख्य रूप से होते हैं। पनीर बनाने की प्रक्रिया में दूध की शर्करा और पानी में घुलनशील दूसरे विटामिन और प्रोटीन के साथ बाहर निकल जाते हैं। पनीर बनाने के लिए दूध को धीमी आँच पर गर्म करके 70^0 F पर पाँच मिनट तक उसका तापमान लाकर उसमें एक प्रतिशत साईट्रिक एसिड मिलाकर दूध को फाड़ लिया जाता है तथा मलमल के कपड़े से छानने पर सफेद ठोस पदार्थ जिसमें दूध–वसा, प्रोटीन मुख्य रूप से होते हैं प्राप्त होता है। पनीर बनाने के लिए लस्सी का प्रयोग किया जाये तो पनीर ज्यादा स्वादिष्ट व लचीला बनता है। इसकी गुणवता अच्छी बनाने के लिए छाने गये सफेद पदार्थ को 15 मिनट तक साफ पत्थर या वजन के नीचे रखना चाहिए। पैक करने से पहले बर्फ जैसे ठंडे पानी में या बर्फ में रखने पर इसकी सरंचना में मजबूती आ जाती है। हमारे देश में इसको व्यवसाय के रूप में

अपनाने पर कुछ समस्याऐं आती हैं जैसे– (1) उन्नतशील तकनीक का अभाव (2) पनीर का जल्दी खराब होना (3) उत्पादन लागत अधिक होना प्रमुख है। पनीर का प्रयोग मुख्यतः सब्जियाँ व अन्य व्यंजन बनाने में होता है।

5. **छैना :** छैना मुख्यतः गाय के दूध से बनता है जिसमें दूध के वजन का 16–18% तथा 49–54% आर्द्रता वाला व पनीर की भाँति बनने वाला सफेद पदार्थ जिसकी सरंचना नरम एवं दानेदार होती है। इस को बनाने के लिए दूध को उबाल कर आँच से उतार लें तथा चम्मच से चलाते रहें। अब दूध में 1 प्रतिशत सिट्रिक एसिड का घोल बनाकर मिलाऐं। छैना बन जाता है तो हल्के हरे रंग का पानी अलग हो जाता है। इसको मलमल के कपड़े से छानकर 15 मिनट तक लटकाते है, तथा इसको कभी भी निचौड़ना नहीं चाहिए। लटकाने के बाद पानी टपकना बंद हो जाये तो छैना अलग कर लें।

6. **मक्खन :** एक ऐसा पदार्थ जिसमें वसा की मात्रा कम से कम 80% तथा नमी 16% से अधिक नहीं होनी चाहिए। उसको मक्खन कहते हैं। इसको बनाने के लिए परम्परागत विधि में दूध को जमाकर दही बनाने के बाद बिलोकर मक्खन व छाछ को अलग किया जाता है। आजकल डेयरी प्लांटों में क्रीम को कल्चर द्वारा राईपन करके प्राप्त किया जा रहा है। इसका प्रयोग गर्म करके घी बनाने तथा टेबल बटर के रूप में किया जाता है। टेबल बटर का प्रचलन काफी लोकप्रिय होता जा रहा है।

7. **घी :** घी एक ऐसा उत्पाद जिसमें 99.5% दूध वसा और 0.5% तक आर्द्रता होनी चाहिए। हमारे देश में घी कई तरीकों से बनाया जाता है। दूध को जल्दी खराब होने से बचाने के लिए प्राचीन काल से ही घी का निर्माण किया जाता है। ग्रामीण लोगों के भोजन का एक पौष्टिक एवं लोकप्रिय पदार्थ घी को देसी तरीके से या क्रीम, मक्खन आदि से बनाया जाता है। देसी तरीके से भी तैयार करने के लिए दूध को गर्म करके दही जमाते हैं। इस दही को बिलौने पर लस्सी व मक्खन प्राप्त होता है। इस मक्खन को हल्की आँच पर गर्म करके घी तैयार करते हैं। इस तरह की विधि गाँवों में अधिक प्रचलित है। गाँव में दूध का काफी हिस्सा घी बनाने के लिए प्रयोग होता है। इसको कम जगह में लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है तथा आसानी से बाजार में लाकर बेचा जा सकता है। क्रीम के द्वारा निर्मित घी का अच्छा स्वाद नहीं होता है तथा बहुत सारे लोग इसको पंसद नहीं करते हैं। इसके स्वाद को अच्छा बनाने के लिए इसको जामन (खट्टा) लगाकर जमा दिया जाये तथा फिर मक्खन निकालकर घी बनाये जाऐ तो इसका स्वाद काफी अच्छा हो जाता है।

दूध उत्पादक/डेयरी व्यवसाय अपनाने वाले व्यक्ति अगर दूध के उपरोक्त उत्पाद बनाकर बेचते हैं तो उस स्थिति में उनका मुनाफा कई गुणा तक बढ़ाया जा सकता है। एक आर्थिक विश्लेषण के मुताबिक जहाँ पनीर में 28%, दही में 74.38%, खोआ में 110%, क्रीम में 95%, आईसक्रीम में 168%, छैना में 45.70%, मक्खन में 125.70% तथा घी में 95% लाभ होता है। वहीं दूध को सीधा बिना उत्पाद बनाए बेचते हैं तब मुनाफा काफी कम रहता है। अधिक आमदनी अर्जित करने के लिए दूध के उत्पाद बनाकर बेचने कि स्थिति में किसान/डेयरी मालिक आर्थिक दृष्टि से काफी सुदृढ़ बन सकते हैं।

कुत्तों से मनुष्यों में संचारित होने वाले रोग

अनीता दलाल[1], कमलदीप[2], अनिका मलिक[3] एवं गौरव चराया[4]

[1]पशु चिकित्सा सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, [2]पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग,
[3]पशु चिकित्सा एवं पशुपालन विस्तार शिक्षा विभाग, [4]पशु औषधि विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्राणिरूजा रोग वो बीमारी है जो संक्रमित पशुओं से मनुष्य या मनुष्य से पशुओं में फैलती हैं। ये बीमारियाँ पशुओं से मनुष्यों में कई माध्यमों द्वारा फैलती हैं। सारिणी कुत्तों से मनुष्यों में फैलने वाली बीमारियों का संक्षिप्त विवरण देती है।

रोग का नाम	कारण	मनुष्य में संक्रमण का कारण
1. जीवाणु रोग		
एंथ्रैक्स	*बेसिलस एंथ्रासिस*	बालों से सीधा सम्पर्क एवं भोजन में मिलावट आदि।
ब्रूसेलोसिस	*ब्रूसेला एबोर्टस*	सीधा सम्पर्क
डिप्थीरिया	*कोरीनेबैक्टरियम*	सीधा सम्पर्क
लैप्टोस्पाइरोसिस	*लैप्टोस्पाइस कैनीकोला*	त्वचा की खुरचन से सीधा सम्पर्क
ट्यूबरकुलोसिस	*माइक्रोबेक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस*	सीधा सम्पर्क
पास्ट्यूरलहोसिस	*पास्ट्यूरेला मल्टोसीडा*	काटने से सीधा सम्पर्क, मिलावट
प्लेग	*यरसीनिया पेस्टिस*	मक्खी इत्यादि के सम्पर्क से
साल्मोनेलोसिस	*साल्मोनेला टाइफी*	संक्रमित माँच भक्षण भोजन और पानी में मिलावट
2. विषाणु रोग		
रेबीज़	*रेबडो वॉयरस*	संक्रमित जानवरों के काटने से
मीसल्स / चेचक	वॉयरस	सीधा सम्पर्क
3. जीवधारी रोग		
सकैबीज़ (मेन्ज़)	*सार्कोप्टीक स्कैबिआई*	सीधा सम्पर्क
क्युटेनियस रोग	*डर्मेटोफीलस*	सीधा सम्पर्क
4. हेलमिंथिक रोग		
एस्कैरियसिस	*टॉक्साकारा कैनिस*	सीधा सम्पर्क, भोजन पानी में मिलावट

प्राणिरूजा रोगों से बचाव के उपाय :

- बीमार कुत्ते का जल्द से जल्द उपचार कराएँ।
- पालतू कुत्तों का बीमारियों से बचाव के लिए टीकाकरण करवाएँ। जैसे– एंटी रेबीज़ 3 महीने की आयु में और इसके उपरान्त हर साल बूस्टर टीकाकरण कराना चाहिए। जो इस लाईलाज बीमारी से बचाता है बल्कि मालिक को भी इस रोग के होने से बचाता है।
- चर्म प्राणिरूजा रोगों के बचाव के लिए कुत्तों को गर्मियों में हर हफ्ते व सरदियों में 15–21 दिन के अन्तराल पे मेडिकेटिड शैम्पू या साबुन से नहलाना चाहिए।
- चर्म प्राणिरूजा रोगों से ग्रसित कुत्तों की चमड़ी की जाँच करानी चाहिए व उनका पूर्ण ईलाज होना चाहिए।
- पालतू कुत्तों के खान–पान की व्यवस्था ऐसे की जाए के मनुष्य का खाना दूषित ना हो। इसके लिए कुत्तों के खाने के बर्तन व स्थान अलग होना चाहिए।
- पालतू कुत्तों के विश्राम का स्थान भी भिन्न होना चाहिए।

घोड़ों में पेट दर्द के कारण व बचाव के उपाय

जय भगवान एवं विनोद कुमार जैन
पशु औषधि विज्ञान विभाग
लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

आजकल पशुओं की कीमत दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं इसलिए अनकी उचित देखरेख जरूरी हैं। घोड़ों में पेट दर्द एक आम समस्या है। पेट दर्द से घोड़े बेकाबू हो सकते हैं व अपने आप को हानि भी पहुँचा सकते हैं। यदि उसका समय पर उचित उपचार न किया जाये तो उसकी मृत्यु भी हो सकती है। अतः इसके उपचार पर तुरन्त ध्यान देना जरूरी है।

इस रोग के कारण

- मुख्य कारण है पेट में कीड़ों का होना। ये कीड़े कई प्रकार के होते हैं। जिसमें स्ट्रोगांईल नाम के कीड़े मुख्य है। जिसके कारण पशु के पेट में भयंकर दर्द होता है।
- पशु का ज्यादा मात्रा में दाना खा लेना है। ज्यादा मात्रा में खाया हुआ दाना पेट में जाकर फूल जाता है। जिससे पशु को पेट में दर्द हो जाता है। गम्भीर अवस्था में पेट फट भी सकता है।
- पशु के पेट में घाव या अल्सर का होना है। कई मक्खियों के लारवे पेट में रहते हैं, जो घाव व अल्सर करते है जिससे पेट में दर्द होता है।
- पशु की आँत में लीद के बड़े–बड़े गोले बन जाते है जो कि आँतों में बन्धा लगा देते है।
- पशु की आँत में उलझने पैदा होना, आँतें मुड़ जाती है और आपस में उलझ जाती है। इस प्रकार आँतों का कुछ भाग सूज जाता है व सड़ने लगता है और आँतें फट जाती है।
- पशु द्वारा कोई पत्थर के टुकड़ें खा लेना जो की आँत में बैठ जाता है और सूजन पैदा कर देता है या बन्धा लगा देता है।
- पशु को दिये जाने वाले चारे में मिट्टी का होना जो पशु का हाजमा खराब कर देता है और लीद में भी काफी मात्रा में मिट्टी आती हैं।
- पशु के चारे का गला सड़ा होना जिससे आँतों में बहुत ज्यादा गैस बनती है जो बाहर नहीं निकल पाती और पेट फूल जाता है।
- कई पशुपालक पशुओं को तूड़ा ज्यादा मात्रा में खिलाते है जिस कारण पशु के पेट में बन्धा लगा देता है।
- पशुओं के दस्तों का ईलाज करने के बाद पशु लीद करना बन्द कर देते हैं जिससे उनके पेट में दर्द हो जाता है।

कई पशुओं में किसी डर के कारण अथवा किसी संक्रमण के कारण थोड़ी–थोड़ी देर बाद पेट में मरोड़ें उठते है। कई पशुपालक पशु से ज्यादा काम लेते है और बीच–बीच में पशु को पानी नहीं पिलाते जिससे पशु के पेट में लीद के गोले जम जाते है।

इसके अलावा कई पशुओं में पेट दर्द के लक्षण दिखाई देते है, परन्तु इसका मुख्य कारण अन्य बीमारियाँ होती है। जैसे निमोनिया, पैरों की सूजन, बच्चेदानी की सोजन, अंडाश्य की सूजन, गुर्दों की सूजन एवं पेशाब के रास्ते की सूजन। इसलिए पेट में दर्द का सही कारण जानना अति आवश्यक है ताकि उसका कारगर उपचार किया जा सके।

रोग की पहचान कैसे करें?

इसके मुख्य लक्षणों से इस रोग की पहचान होती है। पशु बैचेन हो जाता है। कभी बैठता है कभी खड़ा होता है पशु चक्कर काटने लगता है। खाना पीना छोड़ देता है और पेट पर बार बार लात मारता है। इसके अलावा मुड़–मुड़ कर पेट की तरफ देखता है, कुछ पशु लीद नहीं कर पाते है। पशु को बहुत पसीना आता है। पशु बहुत दर्द के कारण थक जाता हैं व निढ़ाल हो जाता है। कई पशुओं की लीद में

कीड़ें या लारवा आते है।

बचाव

1) पशुओं को हर चार महीने बाद पशु चिकित्सक की देखरेख में पेट के कीड़ों की दवाई देनी चाहिए।
2) पशुओं को हर रोज कुछ दूर घूमाना चाहिए क्योंकि कसरत के अभाव में पेट में बन्धा लगने की सम्भावना ज्यादा हो जाती है।
3) पशु को हर मौसम में हलका गर्म पानी पिलाना चाहिए जिससे पशु ज्यादा पानी पीता है और बन्धा लगने की सम्भावना कम होती है।
4) पशुओं को गलासड़ा चारा न खिलाएँ।
5) पशु के दांतों की उचित देखरेख करनी चाहिए।
6) कोई भी तकलीफ हो तो तुरन्त उपचार कराएँ।
7) पशुओं की सप्ताह में एक बार बन्धा खोलने वाला जड़ी–बूटी का चूरण 50–100 ग्रा की मात्रा में खिलाएँ।
8) पशु के काम करवाने के बाद एक दम से चारा पानी न दें।
9) पहले पशु के शरीर को थोड़ा सा ठंडा होने दें उसके बाद ही चारा व पानी दिया जाना चाहिए।
10) पशु को काम में ज्यादा देर लगा कर ज्यादा समय तक भूखा प्यासा ना रखें क्योंकि उसके बाद जब चारा या पानी दिया जाता है तो पशु ज्यादा लालची होकर बहुत ज्यादा खा सकता है व अपने आप को हानि पहुँचा सकता है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. टोल–फ्री हेल्पलाईन सेवा (1800–180–1184)
3. नि:शुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

भेड़-बकरियों में पी.पी.आर. (लघुरोमंथी) महामारी

स्नेह लता चौहान[1], सोनू[2] एवं स्नेहिल गुप्ता[3]
[1]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग, [2]पशु पोषाहार विभाग,
[3]पशु चिकित्सा परजीवी विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

यह एक संक्रामक विषाणु रोग है जो कि भेड़–बकरियों में पाया जाता हैं। भेड़ों की अपेक्षा यह बकरियों को ज्यादा प्रभावित करता है। यह विषाणु पशुओ में अधिक मृत्यु दर और बीमारी पैदा करता है जिससे कि पशु पालकों को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है। गत वर्षों में यह रोग भारत सहित अन्य देशों में भी पाया गया है। भारत में यह रोग सर्वप्रथम तमिलनाडु राज्य के अरसुर नामक गाँव के एक छोटे से भेड़ के झुंड में 1987 में पाया गया। यह विषाणु मनुष्य को प्रभावित नहीं करता है। आज के समय में हरियाणा प्रदेश के कई जिलों तथा कुछ आसपास के इलाकों में भारी मात्रा में इस रोग से ग्रसित पशु देखे जा सकते हैं।

कारण व संचारण

यह पैरामिक्सोवीरीडी कुल के वंश मोर्बिल्ली विषाणु से फैलता है। यह विषाणु रोगी के सीधे सम्पर्क में आने से या सवेंदनशील पशु के सम्पर्क में आने से फैलता है। यह विषाणु पशु के साँस लेने के समय अन्दर प्रवेश कर जाता है। यह विषाणु दूषित खाना और पानी के माध्यम से भी पशु में प्रवेश कर सकता है। संक्रमित बाड़ों की दूषित वायु द्वारा भी विषाणु स्वस्थ पशुओं के शरीर में प्रवेश कर सकता है। संक्रमित नेत्र स्त्राव को स्वस्थ पशुओं तक पहुचाने में मक्खियों का भी महत्वपूर्ण योगदान पाया गया है।

लक्षण

प्रभावित पशुओं में तेज बुखार, नेत्र स्त्राव, सुस्ती, छींके आना तथा बार–बार होठों को चाटना और निमोनिया जैसे लक्षण दिखाई देते है। नेत्र तथा नासिका स्त्राव से पीवयुक्त हो जाने से स्वास नाल तथा आँखे बंद होने लगती है। रोगी पशु में निमोनिया विकसित हो जाने से कठिनाई अधिक बढ़ जाती है और पशु की स्वास तथा अतिसार से दुर्गन्ध आती है। रोग के अतितीव्र रूप से अधिसंख्य पशुओं की मृत्यु 4–10 दिन के अन्दर हो जाती है। बीमारी से जीवित पशुओं में रोग का प्रभाव लम्बे समय तक बना रहता है तथा पशु दुर्भालता के कारण अन्य रोगों के लिए सवेंदनशील हो जाते है। मुखगुहा की स्लेषमकला के अपरदन से निरंतर लार बहती रहती है। कुछ पशु खुले मुँह से साँस लेते हुए दिखाई देते है जो रोग के तेजी से बढ़ते हुए लक्षण को दर्शाते है। यह विषाणु गर्भवती बकरियों में गर्भपात का कारण भी हो सकता है।

निदान

इस रोग के लक्षण अति तीव्र रूप में दिखाई देते है जो पशुओं की अधिकतम मृत्यु दर का कारण होता है इसलिए इसकी जाँच शव परिक्षण चिह्नों के आधार पर की जाती है परन्तु स्थानिक क्षेत्र में रोग के स्पष्ट लक्षण न दिखाई देने के कारण निदान सम्भव नहीं हो पाता है। रोगी अथवा ताजे शव के टांसिल और लसिकाग्रंथि से एकत्रित भाग में विषाणु की जाँच कर पुष्टिकरण किया जा सकता है। विषाणु का आण्विक अभिज्ञान पुष्टिकरण के लिए आवश्यक होता है।

नियंत्रण

रोगी पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए। मादा पशुओं के गर्भपात होने पर उसके मलमूत्र व संक्रमित स्त्राव से बचना चाहिए। नवजात पशु इन संक्रामक रोगों के जीवाणु से ज्यादा प्रभावित होते हैं। पशुपालकों को पशुशाला का अच्छे से रख–रखाव करना चाहिए और पशु चिकित्सक से समय–समय पर सलाह लेनी चाहिए व ज्यादा समस्या हो तो पास के पशु चिकित्सालय में सम्पर्क करे। पशुओं को 3 महीने की आयु पर या उसके बाद इस बीमारी का टीका लगवाना चाहिए और यह टीका 3 साल के अन्तराल पर लगवाया जाता है। भारत में सुंगरी 96, अरसुर 87, कोइम्बतुर 97 विषाणु का प्रयोग करके लाइव एटीनूएटीड टीके को विकसित किया गया है। भारत में यह रोग (प्रकोप) सर्दी और बरसात के मौसम में होता है इसलिए समय रहते पशुओं के बचाव के लिए टीकाकरण करवा लेना चाहिए।

कुक्कुट पालन व्यवसाय की असफलता के कारण व उन्हें दूर करने के उपाय

धर्मवीर सिंह दहिया, विपुल ठाकुर एवं रमेश कुमार
विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रायः यह देखा जाता है कि जिस तीव्र गति से मुर्गी फार्म हमारे देश के किसी निश्चित स्थान पर खुलते नज़र आते हैं, लगभग उसी तीव्र गति से इनका बन्द होना भी जारी रहता है। यही कारण है कि हमारा देश कुक्कुट पालन व्यवसाय में, सरकारी नीतियों व देश की आवश्यकतानुसार पूर्ण रूप से वांछित उन्नति नहीं कर पा रहा है। राष्ट्रीय पोषाहार संस्थान की सिफारिशों के अनुसार प्रति व्यक्ति 180 अण्डे प्रतिवर्ष उपलब्धता होनी चाहिये अपितु हमारे देश में वर्तमान में मात्र प्रति व्यक्ति 63 अण्डे प्रति वर्ष है।

आमतौर पर जब भी इस व्यवसाय से सम्बन्धित विस्तार कार्यकर्ता को किसी गाँव में जाकर किसानों व ग्रामवासियों को उस व्यवसाय के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, तो उसे मुख्य रूप से एक बात सुनने को मिलती हैं कि ''मुर्गीपालन बड़े पैसों वालों का ही व्यवसाय हैं, इसमें हम ग्रामवासियों का क्या काम एवं हम इसमें सफल नहीं हो सकते'' तथापि वास्तविकता इससे कोसों दूर होती है, एवं कुक्कुट पालन व्यवसाय के असफल होने के और भी बहुत से कारण होते हैं। इन कारणों को आसानी से दूर किया जा सकता है तथा इस व्यवसाय को अपनाकर ग्रामीण अपनी एवं देश की अर्थव्यवस्था को एक सुदृढ़ आधार दे सकते हैं।

कुक्कुट पालन व्यवसाय की असफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:–

1. (1) कुक्कुट पालन के व्यवसाय का पूरी तरह आधुनिक व वैज्ञानिक ज्ञान का न होना :

अधिकतर कुक्कुट पालकों की असफलता का एक मुख्य कारण यह पाया जाता है कि कुक्कुट पालक इस व्यवसाय की आधुनिक व वैज्ञानिक ज्ञान की कमी में अपने फार्म को अनजाने में ही, बड़े ही अव्यवस्थित ढ़ंग से शुरू करता है तथा उसे चलाने की असफल कोशिश करता रहता है, फलस्वरूप कुछ समय पश्चात् उसे फार्म द्वारा धीरे–धीरे बढ़ती हुई हानि को सहते हुए बन्द कर देना पड़ता है।

प्रायः पढ़े–लिखे व उच्च अधिकारियों को भी यह कहते अक्सर देखा व सुना जा सकता है कि ''कुक्कुट पालन व्यवसाय थोड़े से प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने भर से ही बड़ी सुगमता के साथ सफलतापूर्वक किया जा सकता है'' जबकि वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरित होती है, क्योंकि कुक्कुट पालन ही क्यों संसार का कोई भी छोटा या बड़ा कार्य बिना आधुनिक ज्ञान के सफलतापूर्वक करना असम्भव ही है और फिर यह तो जीवित पक्षियों रूपी छोटी–छोटी मशीनों का व्यवसाय है, जिस पक्षी के विषय में गाँव के बुजुर्गों में कहावत है कि ''मुर्गी कि जान को सूई की नोंक ही बहुत''।

अतः हम कह सकते हैं कि इस व्यवसाय को शुरू करने से पहले मुर्गीपालक को कुक्कुट पालन का आधुनिक व वैज्ञानिक प्रशिक्षण अवश्य लेना चाहिए। प्रायः देखा जाता है कि कुक्कुट पालन प्रशिक्षण को सही ढ़ंग से महत्वता नहीं प्रदान की जाती। इसके लिए प्रायः 1–2 दिन से लेकर 10–15 या 20 दिन का ही प्रशिक्षण हमारी सरकारी संस्थाओं द्वारा समय–समय पर कुक्कुट पालकों को दिलाया जाता है व उनमें भी प्रयोगात्मकता तथा व्यवहारिकता कि काफी हद तक कमी पाई जाती है। गहनता से पहलू पर अध्ययन करने से पता चलता है कि इस प्रकार के प्रशिक्षण, मनोवैज्ञानिक रूप से कुक्कुट पालकों के लिए घातक सिद्ध होते हैं। इस कमी को दूर करने के लिए कुक्कुट पालन प्रशिक्षण कम से कम तीन माह की अवधि का तथा पूरी तरह प्रयोगात्मकता,

व्यवहारिकता एवं वैज्ञानिकता से भरपूर होना चाहिए।

2. (2) पूंजी की कमी :

कुक्कुट पालन के व्यवसाय की असफलता का मुख्य कारण कुक्कुट पालक के पास पूंजी की कमी का पड़ना पाया जाता है। प्रायः देखा जा सकता है कि मुर्गीपालक न होने ने कारण कीमत अचानक बढ़ जाने, अधिक कमाने के लालच या पिछले नुकसान को पूरा करने के लालच मे अपनी आर्थिक स्थिति से अधिक कार्य शुरु कर देते है, जिससे कई बार समय पर पूरा पैसा न होने से वह पक्षियों को ठीक समय पूरा–पूरा व अच्छा दाना पानी तथा दवाइयाँ व अन्य आवश्यक खर्चों को नहीं कर पाता। फलस्वरूप कुक्कुट पालक दिन प्रतिदिन हानि सहता रहता है और अंत मे मजबूरन उसे अपना व्यवसाय बन्द करना पड़ता है। अतः कुक्कुट पालक को चाहिए कि वह व्यवसाय शुरू करने से पहले ही किसी अनुभवी विषय विशेषज्ञ द्वारा ही व्यवसाय की रूपरेखा तैयार करवाएँ एवं समय–समय पर अपनी व फार्म की आर्थिक स्थिति का अवलोकन करते हुये कार्य को व्यवस्थित एवं सुचारु ढंग से चलाए तथा विपत्ति के लिए कम से कम कुल बजट 15–20 प्रतिशत सुरक्षित कोष जमा रहे तो इस प्रकार बन्द होने वाले फार्मों की संख्या न के बराबर हो सकती है।

3. (3) शुद्ध, सस्ते व संतुलित आहार की कमी :

प्रायः वर्ष भर शुद्ध सस्ते व संतुलित मुर्गी आहार कुक्कुट पालकों को नहीं मिल पाता जिसके कारण भी बहुत से मुर्गी फार्म किसी न किसी स्थान पर बन्द होते देखे जा सकते हो विशेष रुप से वर्षा ऋतु में तो फफूँद व ग्रीष्म ऋतु में नमक विषमता के प्रकरण आसानी से देखे व सुने जा सकते हो। इनके कारण पक्षियों की मृत्यु दर अचानक ही बहुत बढ़ जाती है व मुर्गी पालकों के पास पूंजी की कमी होने के कारण वे तुरन्त इस प्रकार के आहार को नहीं बदल पाते। अतः नुकसान अधिक होने के कारण उन्हें अपना फार्म बन्द करना पड़ जाता है।

अतः इस प्रकार की हानि से बचने के लिए कुक्कुट पालक को चाहिए कि वह अपने फार्म के लिए केवल विश्वसनीय फार्मों द्वारा तैयार किया गया आहार ही प्रयुक्त करें। उन्हें यह भी सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उस फार्म के पास अच्छा आहार तैयार करने सम्बंधी सभी सुविधा उपलब्ध हो एवं उनका प्रयोग नियमित रुप से किया जाता हो। तदोपरांत भी कुक्कुट पालक को वह दाना किसी अन्य विश्वसनीय प्रयोगशाला द्वारा नियमित रुप से जाँच कराते रहना चाहिए। सरकार की ओर से भी कुक्कुट पालकों को सस्ती दर पर मुर्गी आहार उपलब्ध कराने के लिए मुर्गी आहार के विभिन्न संघटकों को ठीक समय पर उपलब्ध कराने के लिए उचित कार्यवाही करनी चाहिए एवं इसके लिए निर्धारित नियम तथा कर्मचारी नियुक्त किए जाने चाहिए।

4. (4) व्यवस्थित मंडियों का न होना :

हमारे देश में कुक्कुट उत्पादों के लिए क्रय–विक्रय के लिए व्यवस्थित मंडिया नहीं है और न ही सरकार द्वारा इस ओर कोई ठोस कदम उठाया गया है। इसके कारण भी वर्ष भर उत्पादकों को अपने उत्पादन का सही मूल्य नहीं मिल पाता, जिससे आरम्भिक अवस्था के मुर्गी फार्म के शुरु में ही उचित लाभ न मिल पाने के कारण बन्द हो जाते हैं।

अतः कुक्कुट पालकों को चाहिए कि वे सही रुप से क्रय–विक्रय करें। सरकार को भी देश भर में इसके क्रय–विक्रय का उचित प्रबन्ध करना चाहिए, ताकि कुक्कुट उत्पादकों को उनके उत्पाद का उचित मूल्य मिल सके।

5. (5) उच्चकोटि के चूजों का उचित मूल्य पर वर्ष भर नियमित रुप से न मिलना :

सरकारी कुक्कुट प्रजनन केन्द्रों की कमी के कारण निजी क्षेत्रों के कुक्कुट केन्द्र बाज़ार में थोड़ी सी तेज़ी आने पर तुरन्त ही अपने चूजों की कीमतें हमेशा–हमेशा के लिए तो बढ़ा ही देते हैं साथ में चूजों की गणना में भी कमी कर देते हैं, यह मुर्गी फार्मों को घाटे में पहुँचाने का एक और मुख्य कारण बन जाता है। अतः इस कमी से कुक्कुट पालकों को बचाने के लिए सरकार को चूजों के लिए भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा दिए गए मानकों के अनुसार ही चूजें वितरित कराने के लिए ठोस कार्यवाही करनी चाहिए। मुर्गी पालकों को चाहिए कि वे अपना वर्ष भर का निश्चित

कार्यक्रम बनाकर एक या दो प्रजनन केन्द्रों द्वारा ही निश्चित मूल्य एवं समय पर चूजें लेने का अनुबन्ध उनसे करें, ऐसा करने पर उन्हें वर्ष भर निश्चित मूल्य पर एवं निश्चित समय पर चूजें मिलने में आसानी रहेगी।

6. रोग निदान प्रयोगशालाओं की कमी :

हमारे देश में पर्याप्त संख्या में कुक्कुट रोग निदान प्रयोगशालाओं की कमी तो है ही, अधिकतर प्रयोगशालाओं में उपकरणों व सभी प्रकार के रसायनों की कमी के साथ–साथ ही कहीं– कहीं पूर्ण रुप से प्रशिक्षित एवं अनुभवी वैज्ञानिकों की कमी भी देखी जा सकती है। मुर्गीपालकों को तुरन्त ही अपने पक्षियों में आई बीमारी का निदान एवं उपचार का पता नहीं लगता, जिससे मृत्यु दर में अप्रत्याक्षित बढ़ोतरी होने से उन्हें काफी हानि उठानी पड़ती है व फलस्वरुप कभी–कभी उन्हें अपना व्यवसाय बन्द करना पड़ जाता है। इस प्रकार होने वाले नुकसान से बचने के लिए कुक्कुट पालकों को चाहिए कि वे किसी अच्छे विषय विशेषज्ञ द्वारा ही किसी अच्छी प्रयोगशाला की सेवाएँ ही तुरन्त प्राप्त करें चाहे वो उनसे दूर ही क्यों न हो। सरकार को भी उपस्थित प्रयोगशालाओं को पूर्ण रुप से सुसज्जित करना चाहिए एवं इनकी संख्या भी बढ़ाई जानी चाहिए। साथ ही साथ कुछ सचल प्रयोगशालाएँ भी शुरु की जानी चाहिए, जिससे रोग निदान का कार्य शीघ्र अति शीघ्र किया जा सके।

7. शुद्ध, सस्ती एवं सुलभता से दवाइयों का न मिलना :

प्रायः देखने में आता है मुर्गीपालक अपनी आवश्यकता की दवाइयाँ अपने फार्म पर नहीं रखते और जब बीमारी फैलती है तो वे दवाइयों के लिए ईधर–उधर भागते हैं, जल्दी में एवं दवाइयों की बाजार में कमी के कारण उन्हें या तो दवाइयाँ सही समय पर मिलती ही नहीं और या फिर कभी–कभी अशुद्ध एवं घटिया दवाइयाँ भी अधिक कीमत पर मिलती है, फलस्वरुप पक्षियों की मृत्यु दर तो बढ़ती ही है साथ ही साथ उत्पादन खर्च में भी अत्याधिक वृद्धि हो जाती है। अतः इस प्रकार की हानि होने से बचने के लिए कुक्कुट पालकों को अपने फार्म पर ही कुछ विशेष दवाइयों का किसी अधिकृत विक्रेता या कम्पनी द्वारा खरीदकर आपातकालीन समय के लिए रखनी चाहिए। साथ ही साथ प्रयोग की गई दवाई की शुद्धता के विषय में शिकायत होने पर उसकी शिकायत अवश्य ही की जानी चाहिए, ताकि सरकार ऐसे विक्रेताओं एवं निर्माताओं के विरुद्ध उचित कार्यवाही कर सके।

8. लापरवाही एवं कमजोर प्रबन्ध व्यवस्था व क्षमता का होनाः

कभी–कभी मुर्गी फार्म में चोरी होना एवं आग लगना भी मुर्गी फार्म की असफलता का कारण बन जाता है। आग लगने का कारण लापरवाही से फेंके गए बीड़ी, सिगरेट के जलते हुए टुकड़े एवं कभी–कभी कुक्कुट पालक की किसी व्यक्ति से व्यक्तिगत दुश्मनी भी आग एवं चोरी का कारण होता है।

अतः इस प्रकार की हानि से बचने के लिए फार्म पर बीड़ी–सिगरेट पीना सख्त मना होना चाहिए एवं विश्वसनीय चौकीदार का प्रबन्ध फार्म पर 24 घंटों के लिए होना चाहिए। फार्म पर कार्य करने वालों की चोरी को रोकने के लिए फार्म का लेखा–जोखा पूर्ण रुप से रखना भी अति आवश्यक है। आग व चोरी के नुकसान से बचने के लिए कुक्कुट पालक को अपने फार्म का बीमा अवश्य करवा लेना चाहिए।

प्रायः देखने में आता है कि शुरु–शुरु में मुर्गी पालन ठीक ढंग से चलने के पश्चात् कुछ मुर्गीपालक लापरवाही करना शुरु कर देता है, जो उनके लिए नुकसान का एक बहुत बड़ा कारण बन जाता है और यदि व्यवसायी की क्षमता उस नुकसान को सहने की नहीं है, तो प्रायः हमारे कुक्कुट पालकों में उनकी सही रूप–रेखा न होने, दूरदर्शिता की कमी व कमजोर प्रबन्ध व्यवस्था तथा क्षमता के कारण उसे यह व्यवसाय बन्द करना पड़ता है।

अतः सुझाव दिया जा सकता है कि इस व्यवसाय में व्यवसायी को पूर्ण रूप से हर क्रिया कलाप का पता होना

चाहिए एवं वह पूर्ण रूप से सही ढंग से ठीक–ठीक समय पर ही होना चाहिए एवं उसे अपनी प्रबन्ध व्यवस्था तथा क्षमता का पूर्ण रूप से उपयोग करना चाहिए।

9. अतिरिक्त आय के लिए सहायक धन्धे के रूप में अपनानाः

अधिकतर लोग मुर्गी पालन व्यवसाय को अतिरिक्त आय के लिए सहायक धन्धे के रूप में करते है। हमारी सरकार भी इसे इसी रुप में समाज के कमजोर वर्गीय लोगों को उनकी आर्थिक दशा सुधारने के लिए उन्हें इस व्यवसाय को शुरू करने के लिए तरह–तरह की छूट देकर प्रोत्साहित करती है। ऐसी इकाइयों का लाभप्रद रुप से अधिक दिन तक चलता रहना, उनको दी जाने वाली तरह–तरह की छूट एवं उनको शुरू करवाने वाले व्यक्ति विशेष की क्षमता पर भी निर्भर करता है, ज्यों ही छूट मिलनी बन्द हो जाती है, ये इकाइयाँ बन्द होना शुरू हो जाती है।

इस विषय में यदि गहराई से अध्ययन किया जाये तो मुख्य रूप से इनके बन्द होने का एक ही कारण होता है कि यह व्यवसाय किसी भी रूप में अतिरिक्त आय के लिए सहायक धन्धे के रूप में नहीं चलाया जा सकता। इस व्यवसाय को पूर्ण रूप से सफलतापूर्वक चलाने के लिए हर वक्त की देख–रेख की अति आवश्यकता है।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन

रूबी सिवाच[1], इंदू पांचाल[2] एवं शालिनी अरोड़ा[3]
[1]डेयरी रसायन विज्ञान विभाग, [2]डेयरी अभियन्त्रिका विज्ञान विभाग,
[3]प्रोद्यौगिकी विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

स्वस्थ पशु ही स्वच्छ और उच्च गुणवत्ता वाला दूध देने में सक्षम है। पशुओं में संक्रमण एवं थन की सूजन उच्च गुणवत्ता वाले दूध का उत्पादन करने में बाधक हैं क्योंकि दूध की निकासी के बाद दूध की गुणवत्ता में सुधार नहीं किया जा सकता। इसलिए उच्च गुणवत्ता वाले दूध के उत्पादन के लिए दूध की निकासी के बाद भी एक प्रभावी नियंत्रण कार्यक्रम की आवश्यकता होती है।

दूध की अधिकतम गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए सभी चरणों में उचित स्वच्छता एवं संरक्षण की आवश्यकता है जब स्वच्छता एवं संरक्षण इत्यादि गुणों को दुग्ध उत्पादन प्रणाली के सभी पहलुओं पर लागू किया जाता है तभी अधिकतम लाभ प्राप्त होता हैं। इनमें पशु पर्यावरण, दुग्ध प्रणाली, दुग्ध प्रक्रियाओं और दुग्ध भंडारण एवं शीतलन प्रणाली शामिल हैं। समग्र प्रणाली के किसी भी हिस्से में एक कमी का परिणाम होगा दूध की गुणवत्ता में कमी।

दूध में जीवाणुओं को नियंत्रित करने में मुख्य रूप से स्वच्छता और शीतलन उपयोगी हैं। स्वच्छता स्वस्थ पशु, पशुओं के पर्यावरण, दुग्ध क्षेत्र, दुग्ध बर्तन एवं उपयोग मे आने वाले उपकरण, दुग्ध प्रक्रिया में शामिल कर्मियों, दुग्ध भंडारण क्षेत्र, दुग्ध प्रणाली और थोक टैंक पर लागू होती है। निकासी के बाद दूध कितनी जल्दी ठंडा किया जाता है शीतलन दूध के कम तापमान को दर्शाता है।

निम्नलिखित कार्य जीवाणु वृद्धि को बाधित करने में मदद कर सकते है :

1. **स्वस्थ पशु एवं स्वच्छ पर्यावरण**– पशुओं का वातावरण हर समय स्वच्छ, सूखा और आरामदायक होना चाहिए।
2. **दुग्ध कर्मिकों की स्वच्छता**– गंदे कपड़े और गंदे हाथ से दुग्ध प्रणाली के प्रदूषण का खतरा बढ़ जाता है, दुग्ध दुहन के दौरान साफ कपड़े पहने तथा दुग्ध दुहन शुरू करने से पहले और दुग्ध दुहन के दौरान अक्सर हाथों को अच्छे से धों लें।
3. **दुग्ध प्रणाली और बर्तनों की सफाई**– दुग्ध बर्तन (हाथ दुहना स्थितियों) और दुग्ध मशीनों सहित सभी उपकरण साफ और स्वच्छ होने चाहिए। उपयुक्त क्लीनर्स या रसायनों के साथ एक पूरी वॉश चक्र का प्रयोग करें तथा ये सभी कार्य पूर्ण एकाग्रता से करें।
4. **उचित सफाई रसायनों का उपयोग करें**– अधिकांश रसायन सुनिश्चित तापमान पे कार्य करते है। अधिकतम प्रभावशीलता के लिए तापमान रेंज सुनिश्चित करें ताकि पानी का तापमान और इष्टतम रासायनिक तापमान आपके सिस्टम में मेल खाते हो। सफाई रसायनों के सबसे किफायती और प्रभावी उपयोग के लिए पानी की गुणवत्ता एवं क्लीनर की उचित मात्रा ही अवश्यक है।
5. **पानी की गुणवत्ता जाँचें**– जानवरों को गंदे पानी के तालाब/नदी में जाने से रोके अथवा प्रत्येक पशु से दूध निकालने से पहले पशु के थनों को साफ पानी से धोएँ।
6. **जल्दी से दूध को शीतल करें**– यदि 2 घंटे से अधिक समय तक दूध घर पर रखा जाए तो दूध जल्दी खराब हो जाता है क्योंकि दूध की गुणवत्ता पर्यावरण पर निर्भर करती है ऐसे मे जल्दी ही दूध के शीतलन की आवश्यकता होती है। दूध की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए, दूध को शीघ्र ही 5 डिग्री सेल्सियस या उससे कम किया जाना चाहिए और उसके बाद इसे 4–5 डिग्री सेल्सियस पर संग्रहीत किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त सुझाव के अलावा, पशुओं मे थन की सूजन न्यूनतम स्तर पर हो इसके लिए निम्नलिखित बातों काध्यान रखना चाहिए :

- **उचित स्वच्छता**– उचित स्वच्छता थन कैंसर नियंत्रण में सबसे महत्वपूर्ण प्रबंधन है।स्वच्छता उपायों का सारांश निम्नानुसार किया जा सकता है।प्रत्येक दूध से पहले एवं बाद में थन को निस्संक्रामक से धोना एव तौलिये से पोंछना चाहिए। दुग्धकों के हाथ एवं दूध देने से पहले दूध देने वाली मशीनों का निस्संक्रमण किया जाना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त डिस्नेफेक्टेंट निम्नानुसार हैं।

1. आयोडोफोर समाधान में 0.1 से 1.0 उपलब्ध आयोडीन।
2. क्लोरहेक्सिडिन 0.3 जलीय घोल।
3. सोडियम हाइपोक्लोराइट (4 प्रतिशत समाधान)

- **उचित दुग्ध प्रक्रिया**– डेयरी पशुओं के लिए पूर्ण दुग्ध दुहन महत्वपूर्ण है चाहे वह हाथ से या मशीन द्वारा किया जाए। मशीन दुग्ध उत्पादन में दुग्ध प्रबंधन और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। दुग्ध मशीन के जिवाणुशोधन के साथ–साथ निम्नलिखित कारकों पर विचार किया जाना चाहिए।

1. दूध और थन की सूजन को स्ट्रिट कप या कैलिफोर्निया परीक्षण (सी.एम.टी.) के द्वारा जाँच करें।
2. दुग्ध इकाई को ठीक से संलग्न करें।
3. इष्टतम वैक्यूम सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
4. धड़न दर अनुमेय सीमा के भीतर बनाएँ रखा जाना चाहिए।
5. टीट लाइनर को विच्छेदन आदि के लिए चेक किया जाना चाहिए और इसे कम से कम एक महीने मे एक बार बदला जाना चाहिए।
6. सभी स्वस्थ पशुओं को दुहने के बाद अंत में संक्रमित पशु का दूध दुहे।
7. दुहना उपकरण का नियमित रूप से निरीक्षण करें।

अंत में महत्वपूर्ण है कि पशुओं के उच्च स्वास्थ्य स्थिति के लिए उचित लक्ष्य निर्धारित किया जाए। साफ व स्वच्छ दूध का उत्पादन करने के लिए आवश्यक है कि दुग्ध उत्पादन प्रणाली के लगभग हर पहलू पर दूध का मूल्यांकन किया जाये। लगातार उच्च गुणवत्ता वालेदूध का उत्पादन करने के लिए एवं कम जीवाणुओं वाले दूध के साथ कई विवरणों पर निरंतर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। कभी भी कम गुणवत्ता के किसी भी अन्य उत्पाद या उपकरण से समझौता न करें।

पशुओं में सर्रा रोग के प्रभाव तथा प्रबंधन के उपाय

एस.के. गुप्ता, स्नेहिल गुप्ता एवं सत्यवीर सिंह
पशु चिकित्सा परजीवी विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

सर्रा एक बहुत ही घातक बीमारी है जो खून में पाये जाने वाले एक सूक्ष्म परजीवी ट्रायपैनोसोमाइवेनसी की वजह से होती है। इस बीमारी का नाम "सर्रा" एक हिन्दी शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है "सड़ा हुआ"। इस बीमारी में पशु का शरीर अत्याधिक कमजोर हो जाता है तथा उत्पादन क्षमता में भारी कमी आ जाती है।

संक्रमण– ट्रायपैनोसोमा इवेनसी का संक्रमण दुनिया भर में गर्म खून वाले पशुओं में पाया जाता है। इस बीमारी का प्रसार एक जानवर से दूसरे जानवर में खून चूसने वाली मक्खियाँ टेबेनस (डाँस मक्खी) तथा सटोमोकसिस करती है। माँसाहारी जानवरों में सर्रा रोग संक्रमित माँस खाने से हो जाता है। अधिकतर कुत्तों में यह रोग जंगली पशुओं के काटने से आ जाता हैं।

प्रभावित पशु– सर्रा रोग बहुत से स्तनधारी जानवरों जैसे घोड़ें, ऊँट, मवेशी, भैंस, कुत्ते, बाघ, हाथी, गधे, खच्चर, हिरण आदि को प्रभावित करता है लेकिन ऊँट, घोड़ें तथा भैंस मुख्य रूप से प्रभावित होते है। ऊँटों में सर्रा रोग अक्सर 2–3 साल तक रहता है इसलिए इसे "तिबरसा" भी कहा जाता है। उत्तरी भारत में गधे तथा खच्चर में इस रोग का परजीवी बिना किसी लक्षण के रक्त परवाह में बना रहता है। जिन इलाकों में डाँस मक्खी (टेबेनस) तथा गधे व खच्चर की जनसंख्या अधिक होती है, वहाँ सर्रा रोग दीर्घकालीन प्रचलीत रहता है।

प्रभावित क्षेत्र– भारत में सर्रा रोग के मामले देश के सभी भागों से मिलते है, लेकिन इसकी घटना मुख्य रूप से उत्तर और उत्तर–पश्चिम क्षेत्र जैसे पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात और उत्तर प्रदेश में अधिक देखे जाते है। इस रोग के अधिकतम प्रकोप मानसून की शुरूआत से लेकर मध्य सर्दियों तक होता है।

लक्षण– सर्रा रोग के लक्षण दिखाई देने में कुछ दिनों से लेकर कुछ महीनों तक का समय लग सकता है। यह रोग पशुधन उत्पादन में महत्वपूर्ण आर्थिक एवं शारीरिक नुकसान पहुँचाता है जैसे कि काम कर रहे पशुओं के उत्पादन में कमी, पशुओं के मृत्युदर में बढ़ोत्तरी, शारीरिक भार में कमी, दुग्ध उत्पादन में कमी, प्रजनन सम्बंधित नुकसान व उपचार की लागत आदि।

सर्रा रोग के मुख्य लक्षण इस प्रकार है :

1. रूक–रूक के तेज बुखार आना।
2. रक्तालपता।
3. दुर्बलता।
4. आँख की झिल्ली खून जैसे रंग की होना।
5. पैरों तथा पेट पर सूजन आना।
6. शरीर के पिछले हिस्सों को धीरे–धीरे लकवा मार जाना।
7. भैंस और ऊँटों में गर्भपात का होना।
8. बुखार का बार–बार चढ़ना और उतरना।

निदान– सर्रा रोग से निदान के लिए निम्नलिखित मानकों का ध्यान रखना चाहिए :

1. क्षेत्र विशेष में ट्रायपैनोसोमा इवेनसी परजीवी तथा टेवेनिडस एवं सटोमोकसिस मक्खियों का होना।
2. रोगों के लक्षणों से।
3. प्रयोगशाला में रक्त की जाँच से।
4. पशु रोग निदान प्रयोगशाला में चूहों में इनोक्युलेषन परीक्षण से।
5. इम्युनों डायगनोसिटक परीक्षणः अप्रत्यक्ष हिम एग्लुटनेसन परीक्षण, अप्रत्यक्ष फ्लोरोसेंट एंटीबॉडी परीक्षण, पूरक निर्धारण परीक्षण (सी.एफ.टी.), एंजाइम लिंकड इम्युनो सेरबेंट एसे (एलिसा) और कार्ड एगलुटनेसन ट्रायपैनोसोमल परीक्षण (काट)।

6. पोलीमरेज चेन अभिक्रिया और डी.एन.ए. जाँच से।

उपचार– निम्नलिखित दवाओं का प्रयोग सर्रा के उपचार एवं रोकथाम में होता है :

1. एन्ट्रीसाइड मिथाइल सल्फेट 5 मि.ग्रा. प्रति किलो शारीरिक भार की दर से 10 प्रतिशत का घोल बनाकर पशु के चमड़ी के नीचे अन्तःक्षेप किया जाता है।
2. एन्ट्रीसाइड प्रोसाल्ट (ट्राइक्युन)– इस दवा में 3 भाग एन्ट्रीसाइड मिथाइल सल्फेट (उपचार कारक) के एवं 2 भाग एनट्रीसाइड क्लोराइड के होते है।
3. आइसोमेटामिडियम क्लोराइड (सैमोरीन, ट्राइपेमिडियम)– यह दवा 0.5–1 मि.ग्रा. प्रति किलो शारीरिक भार की दर से अंतःपेशीय रूप से अन्तःक्षेप किया जाता है।
4. डाइमिनेजीन एसीटुरेट (बेरेनिल)– यह दवा 3.5–7 मि. ग्रा. प्रति किलो भार की दर से माँसपेशियों में लगाया जाता है।

रोकथाम एवं नियंत्रण– सर्रा रोग से बचाव के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

1. बरसात का मौसम शुरू होने से पूर्व अतिसंवेदनशील पशुओं पर रोग निरोधी दवाओं (एन्ट्रीसाइड प्रोसाल्ट) का प्रयोग करें।
2. बीमार पशुओं का तत्काल उपचार करें।
3. मक्खियों के प्रजनन स्थलों पर कीटनाशक दवाओं का इस्तेमाल।
4. ऊँटों में मेलारसोमिन (साईमेलारसन) उपचारात्मक दृष्टि से बहुत प्रभावी है।
5. सर्रा के लिए वैकल्पिक हर्बल दवाओं की पहचान की जानी चाहिए।

पशुओं में अफरा रोग

सुरभि[1], अंकित कुमार[2], ज्योति शूंठवाल[3] एवं वीनस[4]
[1]पशु देहिकी एवं जीव रसायन विभाग, [2]आर.वी. डेक, उचानी, करनाल, [3]पशु पोषण विभाग
लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

अफरा पशुओं में आमतौर और अचानक होने वाली बीमारी होती है। यह रोग पशुओं में अधिक खाने या दूषित खाने के कारण होता है। इस रोग में पशु के पेट में दूषित गैस की मात्रा अत्यधिक हो जाती है जैसे कि अमोनिया, कार्बन–डाई–ऑक्साइड, मीथेन आदि। यह या तो एक स्थिर फोम के रूप में होती है जिसे प्राथमिक ब्लोट कहा जाता है, या निगलना से पृथक मुक्त गैस के रूप में होती है जिसे माध्यमिक या फ्री–गैस ब्लोट कहा जाता है। इस गैस का दबाव छाती पर पड़ता है और पशु को सास लेने में तकलीफ होती है। यदि इस अवस्था में तुरंत इलाज नहीं किया जाये तो पशु तीन–चार घंटों के भीतर मर जाता है।

अफरा रोग किन–किन कारणों से होता है?

पशुओं में अफरा रोग का सीधा सम्बन्ध उसके खान–पान से होता है।

- खाने में अचानक बदलाव करना।
- अत्यधिक मात्रा में हरा रसीला चारा, भीगा चारा एवं दाना खा लेना।
- गेहूँ मक्का आदि अनाज ज्यादा मात्रा में खा लेना।
- बरसात के दिनों में कच्चा चारा अधिक मात्रा में खा लेना।
- गर्मी के दिनों में उचित तापमान न मिलना और पाचन क्रिया गड़बड़ाना और अपच हो जाना।
- चारे भूसे के साथ कीड़े और जहरीले जानवर खा जाना।
- बरसात के दिनों में दूषित पानी पी लेना।
- बिनौले जैसे तैलीय आहार का देना।
- हरा चारा बरसीम को खेत से काटकर सीधे पशु को खिलाना।
- नए भूसे को अधिक मात्रा में देना।
- बाछा–बाछी को ज्यादा दूध पीने के कारण।

लक्षण

पशु पालक को पशुओं में अफरा रोग की पहचान करने के लिए निम्नलिखित लक्षणों का ध्यान रखना चाहिए।

- पशु का पेट फूल जाना।
- ज्यादातर बाँया तरफ का पेट पहले फूलना।
- साँस लेने में कठिनाई होना।
- पेट को थपथपाने पर ढोल की तरह (ढप–ढप) की आवाज आना।
- पशु का चारा–दाना छोड़ देना।
- जुगाली करना बंद कर देना।
- पशु का झुककर खड़ा होना।
- रोग के अत्यधिक तीव्र अवस्था में पशु का बार–बार लेटना और खड़ा होना।
- पशु कभी–कभी जीभ बाहर लटका कर हाँफना।
- जमीन पर लेटकर पीछे के पैरों को पटकना।
- पेशाब मल त्याग बंद कर देना।

बचाव

निम्नलिखित बातों का ध्यान रख कर पशुओं को अफारे से बचाया जा सकता है।

- पशु के खान–पान में अचानक परिवर्तन न करें।
- चारा खिलाने के तुरंत बाद पशु को जोतना नहीं चाहिए।
- चारा भूसा आदि खिलाने से पहले पानी पिलाएँ।
- प्रतिदिन पशु को खुला चरने दें।
- दूषित चारा दाना भूसा और पानी न पिलाएँ।

- हरा चारा जैसे बरसीम, ज्वार, रजका, बाजरा काटने के बाद कुछ समय पड़ा रहने दे उसके बाद खिलाये।
- पशु को लगातार भोजन न दे कम से कम 20 मिनट का अन्तराल जरूर दें।
- मौसम में बदलाव होने पर पशु के लिए उचित तापमान की व्यवस्था करें।

अफरा होने पर घरेलू तरीके

पशुओं में अफरा एक जानलेवा बीमारी होती है। जल्दी से जल्दी पशु चिकित्सक से इलाज करवाएँ वरना पशु मर भी सकता है। लेकिन यदि पश चिकित्सक के आने में ज्यादा समय लगता हो तो आप पशु को प्राथमिक उपचार के लिए नीचे बताये गये उपचार में से कोई भी उपचार कर के पशु को बचा सकते हैं।

- पशु को बैठने न दे उसे टहलाते रहे।
- 50 ग्राम हींग और 20 ग्राम काला नमक को एक लीटर छाछ में मिलाकर उसे पिलाएँ।
- सरसों, अलसी या तिल के आधा लीटर तेल में तारपीन का तेल 50 से 60 मी.ली. मिलाकर पिलाये।
- मिट्टी के तेल में सूती कपड़े को भिगो कर पशु को सुँघाए।
- पतली सुई द्वारा पेट की गैस बहार निकले (यह कार्य सावधानीपूर्वक करना चाहिए पूरी जानकारी नहीं होने पर न करें)।
- पशु को लकड़ी के कोयले को चूरा, आम का पुराना आचार, काला नमक, अदरक, हिंग और सरसों जैसी चीज पशु चिकित्सक के परामर्श से खिलायी जा सकती है।

अन्य अफरानाशक औषधियाँ

ऊपर दिए गये पशु के अफरा के घरेलू उपचार थे अब कुछ दवाइयाँ भी पशु पालक को अपने पास रखनी चाहिए ताकि समय पर उचित इलाज हो सके।

अफरानाशक दवाइयों के नाम

- एफ्रोन– 50 ग्राम को एक लीटर गुननुने पानी में मिलाकर बड़े पशु जैसे भैंस, बेल आदि में नाल द्वारा दिया जाना चाहिए।
- गर्लिल्ल–इसे 10 ग्राम मुँह के द्वारा दें।
- टीम्पोल–25 से 80 ग्राम गुनगुने पानी या अलसी के तेल के साथ दिन में दो बार दें।
- टाईम्पलेक्स–100 मी.ली. मुँह द्वारा पिलाएँ।

पशु आवास प्रबंधन के महत्वपूर्ण बिंदू

नरेन्द्र सिंह, संदीप एवं सुभाशिष साहू
पशु उत्पादन प्रबंधन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा व पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रायः यह देखा गया है कि पशु का आवास जितना अधिक स्वच्छ तथा आराम दायक होता है, पशु का स्वास्थ्य उतना ही अधिक ठीक रहता है। जिससे वह अपनी क्षमता के अनुसार उतना ही अधिक दुग्ध उत्पादन करने में सक्षम हो सकता है। अतः दुधारू पशु के लिए साफ सुथरी तथा हवादार पशुशाला का निर्माण आवश्यक है। क्योंकि इसके आभाव से पशु बीमार और दुर्बल हो जाता है और उसे अनेक प्रकार के रोग लग जाते है एक आदर्श पशु आवास बनाने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिएः–

1. **पशु आवास के लिए स्थान का चयन**– पशु आवास का स्थान समतल तथा बाकि जगह से कुछ ऊँचा होना चाहिए, ताकि पानी का निकास सही तरीके से हो सके। यदि गहरे स्थान पर पशु आवास बनाया जाता है, तो इसके चारो ओर पानी तथा गंदगी एकत्रित होती रहती है। जिससे पशु आवास में बदबू रहती है। पशु आवास के स्थान पर सूर्य के प्रकाश का होना भी आवश्यक है। पशु आवास की लम्बाई उत्तर–दक्षिण दिशा में होने से पूर्व व पश्चिम से सूर्य की रोशनी खिड़कियों व दरवाजों के द्वारा पशु आवास में प्रवेश करेगी। सर्दियों में ठंडी व बर्फीली हवाओं से बचाव का ध्यान रखना भी जरूरी है।
2. **स्थान की पहुँच**– पशु आवास का स्थान पशुपालक के घर के नजदीक होना चाहिए, ताकि वह किसी भी समय आवश्यकता पड़ने पर शीघ्र पशु आवास पहुँच सके। पशु आवास का सड़क के नजदीक होना आवश्यक है, ताकि दूध ले जाने, दाना, चारा व अन्य सामान लाने और ले जाने में आसानी रहे और दूध बाजार में ले जाने की सुविधा रहे।
3. **पशु आवास पर बिजली व पानी का प्रबंध**– पशु आवास पर बिजली व पानी की उपलब्धता का भी ध्यान रखना आवश्यक है, क्योंकि डेयरी के कार्य के लिए पानी की पर्याप्त मात्रा जरुरी होती है। इसीलिए वर्तमान समय में पशु आवास के लिए बिजली का होना भी आवश्यक है, क्योंकि रात को रोशनी के लिए तथा गर्मियों में पंखों के लिए बिजली की जरूरत होती है।
4. **चारे, श्रम तथा विपणन की सुविधा**– पशु आवास के स्थान का चयन करते समय चारे की उपलब्धता का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है, क्योंकि चारे के बिना दुधारू पशुओं का पालना एक असम्भव कार्य है। हरे चारे के उत्पादन के लिए पर्याप्त मात्रा में सिंचित कृषि योग्य भूमि का होना भी आवश्यक है। चारे की उपलब्धता के अनुरूप ही दुधारू पशुओं की संख्या रखी जानी चाहिए। पशुओं के कार्य के लिए श्रमिक की उपलब्धता भी उस स्थान पर होनी चाहिए, क्योंकि बिना श्रमिक के बड़े पैमाने पर डेयरी का कार्य चलना अत्यन्त कठिन होता है। डेयरी उत्पाद जैसे दूध, पनीर, खोया आदि के विपणन की सुविधा भी पास में होना आवश्यक है। अतः स्थान का चयन करते समय डेरी उत्पाद के विपणन सुविधा को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।
5. **पशु आवास के आसपास का वातावरण**– पशुशाला एक साफ सुथरे वातावरण में बनानी चाहिए। प्रदूषित वातावरण पशुओं के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है जिससे दुग्ध उत्पादन में कमी हो सकती है। प्रदूषित वातावरण के कारण विभिन्न प्रकार के रोग पशुओं में होने का खतरा बना रहता है, इसीलिए हमें पशु आवास के नजदीक साफ–सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

पशु का आवास बनाने की विधि :–

दुधारू पशु का आवास सामान्यतः दो प्रकार का होता है

(क) बंद आवास– इस विधि में पशु को बाँधकर रखा जाता है तथा उसे उसी स्थान पर दाना–चारा दिया जाता है। पशु का दूध भी उसी स्थान पर निकाला जाता है। इसमें पशु को यदि चारागाह की सुविधा हो तो केवल चराने के लिए ही कुछ समय के लिए खोला जाता है। अन्यथा वह एक ही स्थान पर बना रहता है।

- इस प्रकार के आवास में कम स्थान की आवश्यकता होती है, पशुओं को अलग–अलग खिलाना–पिलाना सम्भव है, पशु की बीमारी का आसानी से पता लग जाता है तथा पशु आपस में लड़ाई नहीं कर सकता।
- उपरोक्त लाभों के साथ–साथ इस विधि में कुछ कमीयाँ भी है। जैसे किआवास निर्माण अधिक खर्चीला होता है, स्थान बढ़ाए बगैर पशुओं की संख्या बढ़ाना मुश्किल होता है, पशुओं को पूरी आजादी नहीं मिल पाती तथा मद में आए पशु का पता लगाना थोड़ा मुश्किल होता है।

(ख) खुला आवास– इस विधि में पशुओं को एक चारदिवारी के अन्दर खुला छोड़ दिया जाता है तथा उनके खाने व पीने की व्यवथा उसी में की जाती है। इस आवास को बनाने का खर्च अपेक्षकृत कम होता है। इसमें श्रम की बचत होती है, पशुओं को ज्यादा आराम मिलता है तथा मद में आए पशु का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

इस विधि की प्रमुख मुश्किल यह है कि इसमें अधिक स्थान की आवश्यकता पड़ती है, पशुओं को अलग–अलग खिलाना सम्भव नहीं है तथा मद में आए पशु दूसरे पशुओं को तंग करते है।

(ग) अर्ध खुला आवास– अर्ध खुला आवास बंद तथा पूर्ण खुले आवास की कमियों को दूर करता है। अतः आवास की यह विधि पशु पालकों के लिए अधिक उपयोगी है। इसमें पशु को खिलते, दूध निकलते अथवा इलाज करते समय बाँधा जाता है, बाकी समय में उसे खुला रखा जाता है।

इस आवास में हर पशु को 12–14 वर्ग मी. जगह की आवश्यकता होती है जिसमें से 4.25 वर्ग.मी. (3.5–1.2 मी.) ढका हुआ तथा 8.6 वर्ग.मी. खुला हुआ स्थान रखा जाता है। व्यस्क पशु के लिए चारे की खुरली (नांद) 75 से.मी. चौड़ी तथा 40 से.मी. गहरी रखी जाती है जिसकी अगली तथा पिछली दीवारें क्रमशः 75 से 130 से.मी.होती है। खड़े होने से गटर (नाली) की तरफ 2.5–4.0 से.मी. झुकाव होना चाहिए। खड़े होने का फर्श सीमेंट अथवा ईंटों का बनाना चाहिए। गटर 30–40से.मी. चौड़ा तथा 5–7 से.मी. गहरा तथा इसके किनारे गोल रखने चाहिए। इसमें हर 1.2 से.मी. के लिए 2.5 से.मी. ढलान रखना चाहिए। बाहरी दीवारें 1.5 मी. ऊँची रखी जानी चाहिए। इस विधि में बछडों–बछडियों तथा ब्याने वाले पशु के लिए अलग से ढके हुए स्थान में रखने की व्यवस्था की जाती है। प्रबंधक के बैठने तथा दाने चारे को रखने के लिए भी ढके हुए भाग में स्थान रखा जाता है।

गर्मियों के लिए शैड के चारों तरफ छायादार पेड़ लगाने चाहिए तथा सर्दियों तथा बरसात में पशुओं को ढके हुए भाग में रखना चाहिए। सर्दियों में पशुओं को ठंडी हवा से बचने के लिए बोरे अथवा पोलीथीन के पर्दे लगाए जा सकते हैं।

पशु आवास के संदर्भ में ध्यान रखने योग्य अन्य बातें :

- सूखी और उचित तरीके से तैयार जमीन पर शैड का निर्माण किया जाना चाहिए जिस स्थान पर पानी जमा होता हो और जहाँ की जमीन दलदली हो या जहाँ भारी बारिश होती हो, वहाँ शैड का निर्माण उचित नहीं रहता।
- शैड की दीवारें 1.5 से 2 मीटर ऊँची होनी चाहिए, दीवारों को नमी से सुरक्षित रखने के लिए उनपर अच्छी तरह पलस्तर किया जाना चाहिए। शैड की छत 3–4 मीटर ऊँची होनी चाहिए, शैड को पर्याप्त रूप से हवादार होना चाहिए, फर्श पक्का, समतल और ढलान वाला (3 से.मी.) होना चाहिए तथा उसपर जल–निकासी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि वह सूखा व साफ–सुथरा रह सके।
- पशुओं के खड़े होने के स्थान के पिछे 0.25 मीटर चौड़ी पक्की नाली होनी चाहिए। प्रत्येक पशु के खड़े होने के

लिए 2X1.05 मीटर का स्थान आवश्यक है। नाँद के लिए 1.05 मीटर की जगह होनी चाहिए, नाँद की ऊँचाई 0.5 मीटर और गहराई 0.25 मीटर होनी चाहिए।

- नाँद, आहार–पात्र, नाली और दीवारों के कोनों को गोलाकार किया जाना चाहिए, ताकि उनकी साफ–सफाई आसानी से हो सके। प्रत्येक पशु के लिए 5–10 वर्गमीटर का आहार स्थान होना चाहिए।
- गर्मियों में छायादार जगह और शीतल पेयजल उपलब्ध कराया जाना चाहिए। जाड़े के मौसम में पशुओं को रात्रिकाल और बारिश के दौरान अंदर रखा जाना चाहिए। प्रत्येक पशु के लिए हर रोज बिछावन उपलब्ध कराया जाना चाहिए। शैड और उसके आसपास स्वच्छता रखी जानी चाहिए।
- शैड में मैलाथियन अथवा कॉपर सल्फेट के घोल का छिड़काव कर बाहरी परजीवियों, जैसे चिचड़ी, मक्खियों, आदि को नियंत्रित किया जाना चाहिए।

पशुओं के मूत्र को बहाकर गड्ढे में एकत्र किया जाना चाहिए और तत्पश्चात् उसे नालियों के माध्यम से खेत में ले जाना चाहिए। गोबर और मूत्र का उपयोग उचित तरीके से किया जाना चाहिए। गोबर गैस संयंत्र की स्थापना आदर्श उपाय है। जहाँ गोबर गैस संयंत्र स्थापित न किए गए हों, वहाँ गोबर को पशुओं के बिछावन एवं अन्य अवशिष्ट पदार्थों के साथ मिलाकर कम्पोस्ट तैयार किया जाना चाहिए।

मुर्गियों में हैजा रोग : कारण, लक्षण व बचाव

सुभाष खर्ब[1], आशीष हुड्डा[1] एवं राजेश सिंगाठिया[2]
[1]पशु पालन एवं डेरी विभाग, हरियाणा
[2]पशु चिकित्सा प्रशिक्षण एवं अनुसंधान केन्द्र, चूरु, राजस्थान
पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

मुर्गी हैजा या फाउल कोलेरा पक्षियों में होने वाला एक संक्रामक रोग है जोकि पाश्चुरैला मल्टोसिडा नामक जीवाणु की 'ए' प्रकार से होता है। यह रोग मुख्यतः व्यस्क व बड़ी मुर्गियों में होता है। इस रोग की दो अवस्थाएँ होती है :–

सेपटिसिमिया– इस अवस्था में खून का संक्रमण होता है व मुर्गियों में अचानक व अधिक मृत्यु होती है।

निमोनिया– इस अवस्था में जीवाणु श्वसन तंत्र में ही संक्रमण करता है।

अधिक मृत्यु दर व अण्ड़ों की उत्पादकता में भारी कमी के कारण मुर्गी पालकों को भारी आर्थिक नुकसान होता है। रोगी पक्षी के मुँह व नाक के स्त्राव तथा मल से निरन्तर जीवाणु विसर्जित होता रहता है तथा यह पानी, दाना, बिछावन व हवा को संदूशित करता है। जल्द ही जीवाणु स्वस्थ पक्षियों में मुँह व नाक के द्वारा प्रवेश कर जाता है व संक्रमण कर देता है। चूहे भी इस रोग को फैलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कम जगह में ज्यादा पक्षी रखने व मुर्गीघर में दूसरे रोगाणुओं का संक्रमण, इस रोग के प्रभाव व फैलाव को बढ़ा देते हैं। मुर्गी हैजा का महामारी रूप सामान्यतः सर्दियों व आर्द्र जलवायु में होता है क्योंकि ये परिस्थितियाँ जीवाणु के लम्बे समय तक जीवित रहने व फैलने में सहायक होती हैं।

लक्षण : मुर्गी हैजा से ग्रसित पक्षियों में पाए जाने वाले लक्षण निम्नलिखित हैं :–

- मुर्गियों की अचानक मृत्यु होना।
- बुखार, तनाव व पंखों का झालरदार होना।
- आँख, नाक व मुँह से स्त्राव होना।
- सांस लेने में परेशानी व खाँसी होना।
- मुर्गदाढ़ी (वाटल) व चेहरे पर सूजन व नीला पड़ना।
- हरे या पीले रंग के पानी जैसे दस्त लगना।
- दीर्घकालिक अवस्था (क्रोनिक) में वाटल, जोड़ व फुट पैड में सूजन।

बचाव व रोकथाम

- रोगी पक्षियों का सही जीवाणुनाशक दवाओं से इलाज द्वारा, मृत्यु व अण्डों की उत्पादकता में कमी से होने वाली हानि को कम किया जा सकता है। मुर्गी हैजा के इलाज के लिए कई तरह की जीवाणुनाशक दवाएँ जैसे – सल्फोनामाइडस, टैट्रासाइक्लिनस, इरिथ्रोमाइसिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, पेनीसिलिनस आदि इस्तेमाल की जाती हैं लेकिन कई बार जीवाणुनाशक बन्द करने पर बीमारी दोबारा आ सकती है। बुखार कम करने के लिए ताप निवारक दवा (परासिटामोल) दी जाती है।
- इस रोग से बचाव के लिए बीमारी से पहले टीकाकरण करवाना चाहिए। सामान्यतः पहला टीका 12 से 16 सप्ताह की आयु के बीच लगाया जाता है व दूसरा टीका पहले टीके के 4 से 6 सप्ताह के बाद लगाया जाता है। यदि मुर्गीघर में पहले भी मुर्गी हैजा का प्रकोप हुआ है तो टीकाकरण पहले भी शुरू कर सकते हैं।
- मुर्गी आवास को चूहों से मुक्त रखना अति आवश्यक है क्योंकि चूहे एक आवास से दूसरे आवास में बीमारी फैलाने में सहायक हैं।
- मुर्गीघर में ज्यादा व्यक्तियों व वाहनों की आवा–जाही पर रोक लगानी चाहिए।
- जीवाणु से संदूशित दाना व बिछावन को जला देना चाहिए या गहरे गड्डे में दबा देना चाहिए।
- मुर्गी आवास में साफ–सफाई, समय–समय पर कीटाणुनाशक का प्रयोग व बीमारी से बचाव के टीके लगाने से इस बीमारी के प्रकोप से बचा जा सकता है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार
विस्तार शिक्षा निदेशालय
पशु पालक गोष्ठी
द्वारा
पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी

गोसंवर्धन से ला सकते हैं दुग्ध क्रांति

जागरण संवाददाता, रोहतक : पशुपालकों को अपनी आमदनी को बढ़ाने के लिए पशु नस्ल में अनुवांशिक सुधार, संरक्षण, प्रबंधन और दुग्ध संरक्षण से मूल्य संवर्धन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। तभी गौसंवर्धन को बढ़ावा देकर प्रदेश में दुग्ध क्रांति को कारगर बनाया जा सकता है। देशी गायों की नस्लों के सुधार के लिए कृत्रिम गर्भाधान की विधि अपनाने के साथ-साथ उनके खान-पान व गायों के लिए आरामदायक आवास की व्यवस्था करने पर भी बल देना चाहिए।

प्रशिक्षण शिविर को संबोधित करते डॉ. राजेंद्र सिंह।

यह बात हिसार के लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय विस्तार शिक्षा निदेशक डॉ. राजेंद्र सिंह श्योकंद ने कही। वह रविवार को श्रीकृष्ण गोशाला में आयोजित ...

मुताबिक कार्य करते हैं तो उनकी आमदनी तीन गुणा तक बढ़ाई जा सकती है। उन्होंने बताया कि आय बढ़ाने के लिए सर्व प्रथम ...

दर कम हो जाती है। इस प्रकार देशी गायों का संरक्षण व प्रबंधन करके गौशालाओं को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है। ... धारी डॉ. ... शिविर ... गोशाला ...

कार्यशाला में पशुओं में पाई जाने वाली भावनाओं से कराया अवगत

लुवास में डेयरी प्रशिक्षण के दौरान जानकारी लेतीं महिलाएं। अमर उजाला

लुवास ने करवाया प्रगतिशील महिलाओं को भ्रमण

हिसार (ब्यूरो)। लुवास विस्तार शिक्षा निदेशालय की ओर से महिलाओं का ... दुग्ध उत्पाद पर एक प्रशिक्षण आयोजन किया जा रहा है। ... एवं स्वच्छ दूध उत्पादन, दूध की गुणवत्ता बनाए रखने के ... एवं दूध उत्पादों की बिक्री इत्यादि की बारीकियों से अवगत ... 30 जुलाई को विश्वविद्यालय के डेयरी प्लांट का भ्रमण ... प्रशिक्षण दिया गया। 1 जुलाई को स्वाहड़वा उत्सुक डेयरी भ्रमण करवाया गया। जिसमें महिलाओं को वैज्ञानिक ढंग ... बनाकर सीधे तौर पर उपभोक्ता तक बेच कर अधिक ल... प्रशिक्षण में पशु नस्लों का चयन, नस्ल सुधार, पशु आवास का महत्व, गर्भकाल में पशुओं की देखभाल, जीवाणु-विषाणु ...

महिलाएं पशुपालन क्षेत्र में कमा रही नाम

लुवास विश्वविद्यालय में डेयरी प्रशिक्षण के लिए युवा किसानों की उमड़ी भीड़

... गार हेतु डेयरी पालन युवाओं के लिए साबित हो रहा है, विशेषकर ग्रामीण ... देखने को मिला लुवास द्वारा आयोजित ... में उमड़ी भीड़ से 4 सितम्बर को 250 ... में डेयरी प्रशिक्षण हेतु पंजीकरण ... अधिकतर युवा शामिल थे। इस दौरान भी पीछे नहीं रही और 15 महिलाओं ने ... दिखाई। गौरतलब है कि पिछले ...

संभावनाओं को देखते हुए प्रशिक्षण की मांग बढ़ रही है व इसमें लुवास भी किसानों की मांग पर विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा हर महीने में लगभग ... से 3 प्रशिक्षण करवा कर किसानों को प्रशिक्षित किया जा रहा है। लुवास विश्वविद्यालय यह प्रशिक्षण हिसार ... साथ-साथ अपने अन्य सेंटर पर ... करवाता है, जिसमें जींद, रोहतक, कैथल, भिवानी, रेवाड़ी, गुरुग्राम, सिरसा व सोनीपत शामिल है। इस ... दिवसीय प्रशिक्षण में किसानों को पशुपालन के विभिन्न पहलुओं से परिचित करवाया जाएगा जिसमें नस्ल ... चुनाव व पहचान, उत्तम प्रजनन, छोटे बच्चों की मृत्यु को रोकना, प्रथम ब्यांत की उम्र कम करना, दो ब्यांत के अंतर को कम करना, संतुलित आहार, बीमारियों से बचाव, पशु खुराक में खनिज मिश्रण का महत्व एवं ... प्रजनन, बांझपन की समस्या के निदान व डेयरी ...

लुवास में पशुपालक किसान सम्मेलन में 250 प्रगतिशील किसान हुए शामिल

जून व मई में 4 प्रशिक्षण कार्यक्रमों में 404 पशुपालकों ने ली थी ट्रेनिंग

भास्कर न्यूज | हिसार

लुवास के विस्तार शिक्षा निदेशालय की ओर से सोमवार को ऑडिटोरियम में पशुपालक किसान सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह सम्मेलन सम्मेलन डेयरी फार्मिंग प्रशिक्षण कार्यक्रम का समापन होने पर आयोजित किया गया। इसमें करीब 250 पशुपालक किसान शामिल हुए। जिनमें करीब 60 महिलाएं भी शामिल रहीं। इन किसानों को मई व जून माह में 4 ट्रेनिंगों का सात दिवसीय व्यवसायिक पशुपालन प्रशिक्षण दिया गया था। विस्तार शिक्षा निदेशक डॉ. आर.एस. श्योकन्द की देख रेख में

लुवास में पशुपालक सम्मेलन में लुवास के वीसी डॉ. गुरदयाल सिंह व अन्य

यह प्रशिक्षण करवाया गया था। इसमें 404 प्रशिक्षणार्थियों ने भाग लिया। इनमें 26 महिलाएं भी शामिल थीं।

प्रशिक्षण कार्यक्रम का संचालन डॉ. देवेन्द्र सिंह व सज्जन सिंह द्वारा किया गया। इस प्रशिक्षण में उत्तम पशुओं का चयन, नस्लों की जानकारी, नस्ल सुधार, पशु आवास प्रबंधन, आहार प्रबंधन, बीमारियों से बचाव, टीकाकरण का महत्व, गर्भकाल में पशुओं की देखभाल, जीवाणु, विषाणु जनित रोग, दुग्ध उत्पादन में अधिक लाभ के विकल्प आदि विषयों पर लाभप्रद जानकारियां दी गईं।

कार्यक्रम में विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. गुरदियाल सिंह, अनुसंधान निदेशक डॉ. पी.के. कपूर, पशुचिकित्सा महाविद्यालय अधिष्ठाता डॉ. एम.के. गुप्ता ने भी सम्बोधित किया। समापन समारोह में सभी प्रशिक्षणार्थियों को प्रमाण-पत्र भी वितरित किये गये।

लुवास खोलेगा पशुपालक कॉल सेंटर : डॉ. गुरदयाल

पशुपालक घर बैठे विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों से सीधे कर सकेंगे बातचीत

पशु विज्ञान केंद्र, मान्यता प्राप्त पशु फीड टेस्टिंग लैब पर चिंतन

अमर उजाला ब्यूरो

हिसार

लुवास में कुलपति गुरदयाल सिंह मीटिंग करते हुए।

प्रधानमंत्री रोजगार सृजन प्रशिक्षण कार्यक्रम का समापन